मानव मन्दिर

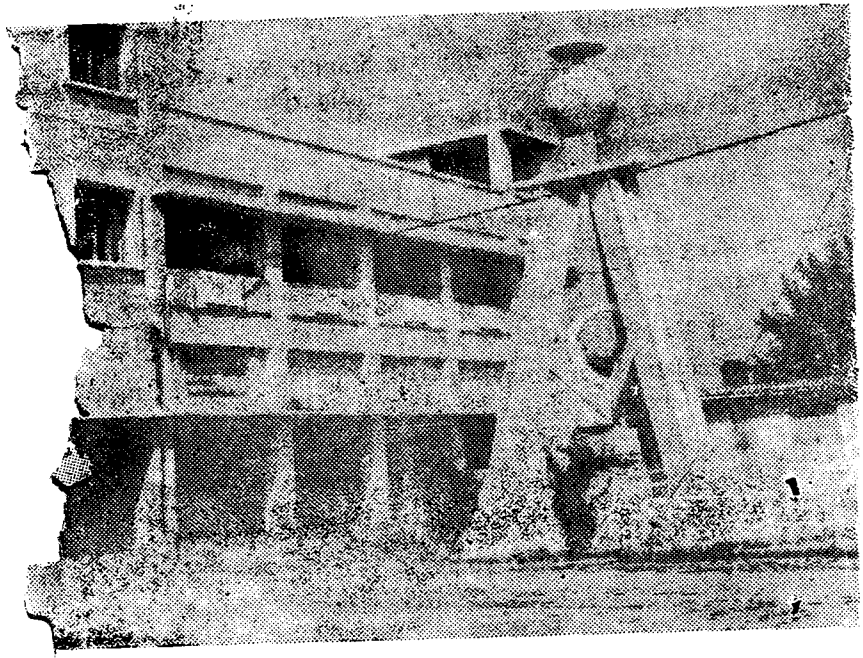

FORM 1

(See Rule 8)

Place of publication	Hoshiarpur
Date of publication	10th of every month
periodicety of publication	Monthly
printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir Hoshiarpur
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated: 10-11-89

Signature of Publisher

Printed and published by: Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 19-11-89 को होगा।

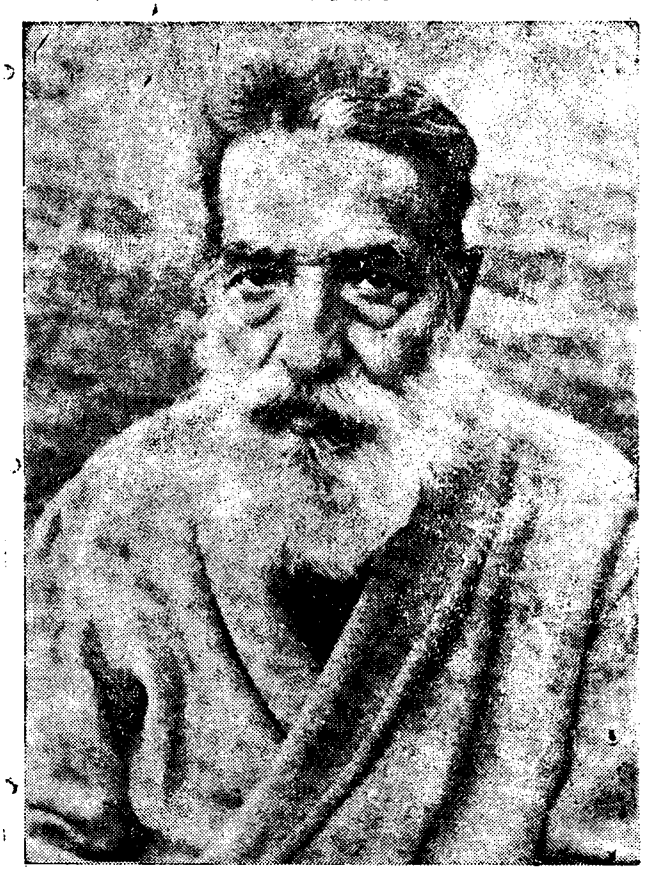

Param Sant Param Dayal Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

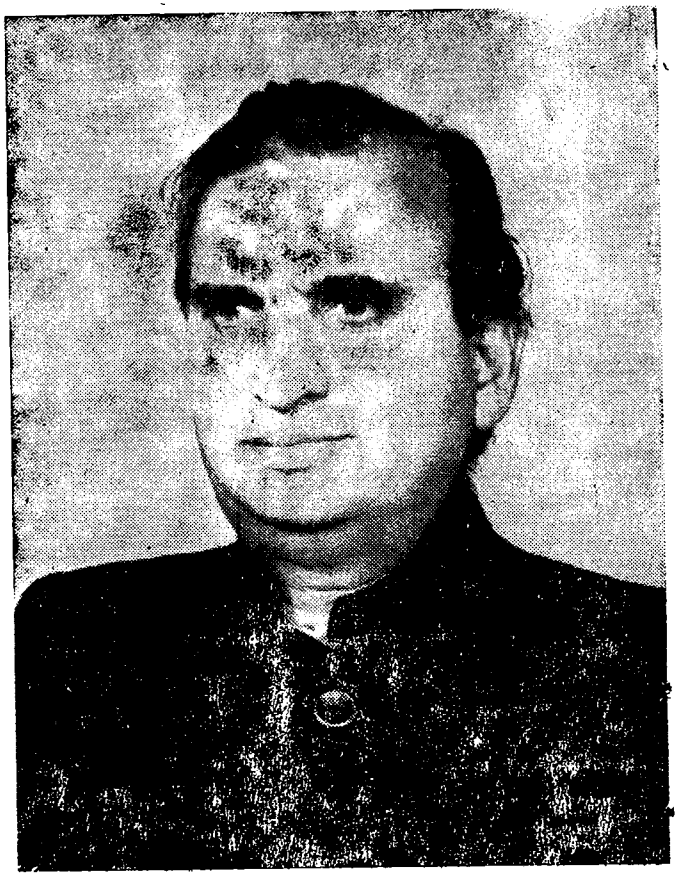

Param Sant Manav Dayal Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

| वर्ष 16 | शुक्रवार, 10 नवम्बर 1989 | संख्या 7 |

सत्य सनातन आर्य धर्म

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज
का 1918 में लिखा गया एक लेख :

सच्चा और सनातन आर्य धर्म संसार का सबसे प्राचीन सबसे उत्तम और सच्चा पन्थ है। इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं कि और सब मत नितान्त नवीन, और झूठे । ऐसा कहना एकदम असत्य होगा। यदि और कोई ऐसा कहे तो कहे, हमको तो हजूर महाराज के चरणों की छाया के नीचे बैठने और उनके चरण-कमल की धूलि को आँखों में लगाने से विशेष प्रकार की विवेकदृष्टि प्राप्त हुई है। इस-लिये हम तो किसी को झूठा नहीं कह सकते। सभी मतों में सच्चाई है। सबकी नींव सच्चाई पर टिकी है और सब अपने-२ ढंग से सच्चाई को प्रकट करते हैं। सच्चाई के बिना इस संसार में कोई भी वस्तु स्थापित नहीं हो सकती। कोई भी मत अथवा धर्म झूठा नहीं है। परन्तु सत्य सनातन आर्य धर्म हिन्दू धर्म तथा दूसरे धर्मों में भेद यह है कि बाकी धर्म एक-२ अंग को लेकर उसका प्रचार करते तथा पक्ष लेते हैं जबकि सत्य सनातन आर्य धर्म एक पूर्ण मार्ग अथवा पन्थ है। इसमें धर्म के सभी अंग विद्यमान हैं। यह बीज से उत्पन्न हुआ पूर्ण वृक्ष है जिसमें पेड़ी, शाखा, टहनी, फूल, पत्ते, फल सब ही विद्यमान हैं।

हिन्दू (सत्य सनातन आर्य धर्म) धर्म की संसार के समस्त मतों के बीच एक विशेष विवेकमय स्थिति है। छोटी

दृष्टि वाले लोग इस धर्म की आंशिक और ऊपरी बातों को सुनकर अकारण ही इससे घृणा करते हैं और इसके अधिकार छीनने की चिन्ता में रहते हैं। जो धार्मिक विचार के संघर्ष का दृश्य इस समय हमारे सामने उपस्थित है, वह हिन्दू धर्म के इतिहास में कोई नई बात नहीं है। ऐसे इस कल्प में अनेकों बार हो चुका है। अंगों और ऊपरी बातों में फँसने वाले राक्षसों ने, अनेकों बार हमें पराजित किया, यहाँ तक कि वे हमारे वेदों तक को छीन ले गये। हमको बेहथियार का बना दिया। हम बेबस हो गये, दीन और अधीन बन गये। क्या यह दशा सदा रही? प्रकृति ने हमारे हथियार हमें फिर प्रदान किये और उनको पाकर हमने अपनी खोई हुई समृद्धि को वापिस पाया और आज भी हम किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। किसी पार्थिव अथवा आकाशी शक्ति को यह अवसर आज तक नहीं मिला कि वह हमें सदैव के लिए मिटा दे और निःशेष कर सके। उसी ऐतिहासिक घटना के दोहराने का समय फिर आया और हम फिर दीन और बेबस हो गये। लोगों ने समझा कि बस अब तो हिन्दुओं की समाप्ति हो जायेगी। परन्तु लोगों को यह पता वहीं है कि सृष्टिप्रबन्ध में, इस भूतल पर हिन्दू जाति को विशेष प्रकार का मिशन (कर्त्तव्य) देकर भेजा गया है। जब तक हिन्दू अपने कर्त्तव्य पर आरूढ़ हैं वे अपनी सम्पत्ति से कैसे वंचित हो सकते हैं? वह मिशन ही उनका धर्म है। यही हिन्दुओं की विशेषता है। 'धर्म' कहते हैं धारण करने को। यह धर्म ही इष्ट है, आदर्श है और ध्येय है। अब तक अनेकों विरोधों तथा आक्रमणों के होने के बावजूद भी, हिन्दू किसी न किसी रूप में धर्म पर आरूढ़ हैं।

यह संसार परिवर्तनशील है। जब किसी एक व्यक्ति की दशा एक ही ढंग पर नहीं रहती तो फिर जाति की कैसे

रह सकती है ? दिन के पश्चात् रात और जागने के पीछे स्वप्न का आना ज़रूरी है। यदि आज हम प्रतिकूल समय के आक्रमणों से दुःखी हो रहे हैं, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है। ऐसा तो सदैव से होता चला आ रहा है। समुद्र में ज्वारभाटे आते ही रहते हैं। आकाश में चाँद का घटना-बढ़ना सदैव होता ही रहता है। गर्मी, सर्दी, बरसात इत्यादि के ऋतुपरिवर्तन को कौन रोक सकता है ? ब्रह्मा ने इस जगत् को बनाया ही ऐसा है। यह ससार द्वन्द्व तथा संघर्ष की भूमि है। इसमें कभी देवताओं की विजय होती है, तो कभी दानवों की। हमें धैर्य के साथ उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए, जब दृष्टिकोण की ठीक-२ पूर्णता हो ले। जब दृष्टिकोण ठीक हो जायेगा तब लोग सच्चाई को स्वयं ही जान जायेंगे और तेजोमय सूर्य को पहिचान जायेंगे। इसमें न तो वाद-विवाद करने की ज़रूरत है और न निराश होने की। लोगों को पूर्णता तथा सच्चाई का ज्ञान स्वयं ही कभी न कभी हो जायेगा, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों।

अब प्रश्न यह है कि हिन्दू धर्म अथवा सत्य सनातन आर्य धर्म है क्या और इस धर्म की रक्षा का सृष्टिक्रम में क्या सम्बन्ध है ? यह प्रश्न अतिकठिन उलझा हुआ तथा अति गहरा है। इसका वर्णन दो-चार या दस-बीस पृष्ठों में नहीं हो सकता। यहाँ पर तो केवल इतना कहा जा सकता है कि जिसको हिन्दू धर्म कहा जाता है, उसको ऋषियों ने अपने ढंग पर श्रुति, स्मृति और पुराण इत्यादि में वर्णन कर दिया है। वह है क्या ? "अंश में पूर्ण का ध्यान और पूर्ण के ध्यान में अंश के कार्य को चित्त देना," यह है हिन्दू धर्म।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बदलते समय के अनुसार श्रुति, स्मृति तथा पुराण इत्यादि में कहीं-२ मिलावट आ गई है। इससे किसी भी अनुभवी हिन्दू को इन्कार नहीं हो सकता। यहाँ तक कि सिकन्दर लोधी के समय में हिन्दुओं के 108 उपनिषदों तक में एक उपनिषद् और बढ़ा दिया गया। लोभी पण्डितों ने धन के लालच में आकर ऐसा किया। इसी प्रकार समय-२ पर स्मृतियों और पुराणों का हाल भी हुआ। श्रुति का संहिता भाग, अभी तक इस आतंक से सुरक्षित है। इसका कारण यह है कि कृष्णद्वैपायन व्यास ने अपनी दिव्य दृष्टि से आने वाले समय के विकार का पता पाकर, उसके अक्षर, शब्द, सूत्र, मण्डल, सूक्त इत्यादि तक की गणना करके, उनके कण्ठस्थ कराने का प्रबन्ध कर दिया था। पुराणों में भी मिलावट की सम्भावना है किन्तु यह इतनी डराने वाली बात नहीं है। हिन्दू सदा से गम्भीर-चित्त और समझ-बूझ वाले रहे हैं। विचार और विवेकशक्ति उनसे कभी दूर नहीं रहती। देखिये तो कुसमय के चक्र में इतनी मिलावट होने के बावजूद भी धर्म की जो व्याख्या शुरू से दी गई है, सामूहिक रूप से आज भी सारे हिन्दुओं का जीवनसिद्धान्त बना है। आपको एक भी हिन्दू ऐसा दिखाई नहीं देगा जो हिन्दू धर्म को इस दृष्टि से न देखता हो, जिस दृष्टि से उसकी व्याख्या की गई है।

अब रहा दूसरा प्रश्न कि "धर्म की रक्षा का प्रबन्ध किस प्रकार किया गया है?" इसके सम्बन्ध में संक्षेप में यह सुन लीजिये कि जब तक हिन्दू

1) वेदों की महत्ता को स्वीकार किये हैं,
2) वैदिक संस्कारों को किसी न किसी रूप में पालन करते रहेंगे,

3) (कर्त्तव्य की दृष्टि से) जात-पात के नियमों पर चलते रहेंगे,

4) ठीक समय पर तोज-त्यौहार मनाते रहेंगे,

5) खाने-पीने के विषय में (संस्कारों की दृष्टि से) छूत-छात का ध्यान रखेंगे तब तक उनको न धर्म से गिरने का भय है और न दूसरे उनको हज़म कर सकते हैं।

नासमझ आदमी मेरी बात को ठीक तरह से समझ नहीं पायेंगे परन्तु यह बात सच है कि हिन्दुओं को उसी मार्ग पर चलना चाहिए जिसका ऋषियों ने आदेश दिया है। दम्भी और पाखण्डी व्यक्ति सबसे अधिक दुष्ट होता है। लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। वे स्वयं अपने मन में विचारें कि उनके जीवन के व्यवहार में सच्चाई है अथवा पाखण्ड। दम्भ एक विष है, जो जाति और देश को विषैला करके नाश कर देता है। हिन्दुओं की ओर से सभी हिन्दुओं को यह स्वतन्त्रता प्रदान है कि वह जिस प्रकार चाहें, रह सकते हैं। परन्तु उनका दम्भपूर्वक रहना सारी जाति को विषैला करते रहना कहाँ तक उचित है ?

हिन्दू जाति में छूत-छात और जाति-पाँति आदि के बन्धन जान-बूझ कर ही लगाये गये हैं। वे मनुष्य नासमझ हैं जो अकारण ही वास्तविकता को न समझ कर, उसकी निन्दा में पड़े रहते है। यह नियम है कि जब तक कोई बंध नहीं बांधा जाता, वर्षा का जल किसी विशेष जगह पर इकट्ठा नहीं किया जा सकता। प्रत्येक वस्तु को रखने के लिए पात्र की आवश्यकता रहती है। पहिले पात्र बनाओगे तभी तो उसमें कुछ रख सकोगे। पौधों के चारों ओर जब तक बाड़ न लगाई जाये तब तक उनमें पशुओं के मुँह मारने

और उनके चर जाने का भय बना रहता है। परन्तु जब नन्हे पौधे विशाल वृक्ष बन जाते हैं और पशुओं के मुंह से ऊपर बढ़ जाते हैं, तब फिर बाड़ की आवश्यकता नहीं रहती। ये बातें प्रत्येक व्यक्ति को प्रारम्भिक अवस्था के लिए जरूरी हैं और ऋषियों ने इसको आवश्यकता का अनुभव करके ही इन बन्धनों का आदेश दिया।

एक बात यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक जाति और प्रत्येक सम्प्रदाय में एक विशेष प्रकार का गुण होता है, जो उसकी विशेषता कहलाता है और उसका यही गुण उसको दूसरों से अलग बनाता है। जब तक यह विशेषता मनुष्य में रहती है, तब तक उसके नष्ट होने का भय नहीं रहता, परन्तु जब वह लोप हो जाता है फिर मृत्यु आकर उसका गला दबा देती है। यही कारण है कि प्रत्येक जाति और प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह केवल उस प्रकार के विचारों, पदार्थों और ज्ञान से सम्बन्ध रखे, जो उसकी विशेषता का पुष्टि करते हों। यदि भूल में पड़कर कोई व्यक्ति अनावश्यक नकली बातों में पड़ जाता है, तो फिर उसकी वह विशेषता छिन जाती है और वह कहीं का नहीं रहता। यदि कोई हिन्दू है, तो उसमें हिन्दुपन का मान, हिन्दूपन का ढंग और हिन्दूपन के विवेचनात्मक सार का होना बहुत ही जरूरी है। जब आप स्वयं ही अपने रंग-ढंग, रीति-रिवाज की निन्दा करते हो, तो दूसरों की दृष्टि में तो गिरोगे ही। जो मनुष्य अपनी ही दृष्टि से गिर जाता है वह दूसरों की दृष्टि में कभी गौरव प्राप्त नहीं कर सकता।

हम संसार में केवल इसलिये ही नहीं आये कि दूसरों के प्रभावों को ही अपने भीतर प्रवेश कराते जायें। हमारे

अपने जीवन का भी उद्देश्य होना चाहिए। हमें दूसरों को प्रभावित करना चाहिए। प्रभाव नाम है संस्कार का। ऋषियों ने हमारे संस्कार विशेष प्रकार के करके, हम को संस्कारवान् और प्रभावशाली बनाया है। हम संस्कृत जाति हैं, हमारा धर्म संस्कृत है और हमारी धार्मिक भाषा तक संस्कृत है। अन्य जातियों का संस्कार इस प्रकार नहीं किया गया जैसा कि हिन्दू जाति का किया गया है। हिन्दू शिशु को माता के गर्भ में आने से पहिले ही हिन्दूपन के संस्कार दिये जाते हैं यह बड़े खेद की बात होगी कि यदि हम ना-समझी में पड़ कर इन पवित्र संस्कारों को त्याग कर, दूसरों के असंस्कृत संस्कारों को ग्रहण करें। जिन संस्कारों के प्रभावों से हिन्दू जाति आज तक कायम है, उसमें ठोसपना, दृढ़ता और स्थिरता है। इसी कारण, हम जगत् की स्थिरता के समय तक जीवित रहेंगे और गिरते पड़ते, किसी न किसी रूप में अपने को बनाये रखने में सफल होंगे। जो व्यक्ति हिन्दू धर्म को छोड़कर औरों में मिल गये हैं, वे शरीर के रोगी अंग की भाँति थे।

हिन्दू जाति का इस संसार में एक विशेष प्रकार का मिशन (कर्त्तव्य) है। वह संसार में विशेष प्रकार का सन्देश सुनाने आई है, विशेष प्रकार का धर्म सिखाने आई है। विशेष प्रकार का सन्देश सुनाने आई है। जब तक वह अपने धर्म पर, अपने कर्त्तव्य पर और अपने सन्देश देने की स्थिति में दृढ़ है, तब तक वह मर नहीं सकती। मरते तो वे हैं, जिनका कार्य समाप्त हो जाता है या जिनके कार्य की ज़रूरत नहीं रहती। प्रकृति के गोदाम में मृत पदार्थ नहीं रखे जाते, जहाँ कोई मरा, प्रकृति की शक्तियाँ स्वयं आक्रमण करके, उसे छिन्न-भिन्न करके नाश कर देती हैं। जातियों को देखो, व्यक्तियों को देखो, सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को देखो, तुम

स्वयं समझ जाओगे। जातियाँ आती हैं। मिश्रित पदार्थ बन-२ कर बिगड़ते रहते हैं। हिन्दू अरबों वर्षों से क्यों जीवित हैं? क्यों? इसमें कोई न कोई तो रहस्य होगा? हिन्दुओं की संख्या यद्यपि संसार में कम है, इससे क्या। खाने में नमक की मात्रा कितनी कम होती है, परन्तु वह सारे खाने को नमकीन बना देती है। हिन्दू संसार में नमक हैं और वे आये इस अभिप्राय से हैं कि वे सबको अपना नमक प्रदान करते रहें। यह उनका धर्म है, यही उनका मिशन है। इस मिशन को पूरा करने की यहाँ हर समय ज़रूरत है। कभी भी ऐसा समय नहीं आयेगा जब उसकी ज़रूरत नहीं होगी।

स्मरण रहे कि संसार की प्रत्येक जाति का आरम्भ, पोषण, पूर्णता, बढ़त, विशेष प्रकार के विचारों के आधीन होते हैं। जिस जाति को नींव जिस विचार पर टिकी होती है, उसकी दृष्टि उसी ही ओर रहती है और उसी प्रकार के भावों, विचारों तथा भ्रमों का उससे प्राकट्य होता रहता है। योरुप की दूध की घुट्टी में, विशेष प्रकार के विचारों की औषधि मिलाई गई थी। इसलिये योरुप उसी प्रकार की उमंग तथा साहस रखता है। चीन और जापान का मानसिक आदर्श कुछ और ही है। संसार में कोई व्यापार का प्रेमी है, तो कोई कला-कौशल का और कोई भोग-विलास का तथा राज्य और अधिकार का। यह मनुष्य के जातीय तथा देशीय जीवन की विशेषता है। वे विशेषताप्राप्त व्यक्ति जितना अपने-२ व्यवसाय में पूर्णता दिखायेंगे, वह दूसरों से आशा नहीं की जा सकती। हमारी जातीय नींव के नीचे ऋषियों ने बिशेष प्रकार के विचारों की कंकरीट दी है, इसलिये हम जिस प्रकार उसे समझ सकते हैं दूसरे नहीं

समझ सकते।

हम इस संसार में आध्यात्मिकता के कोष के स्वामी, अधिकारी और दानी बनकर आये हैं। इतिहास पढ़ो, आप लोगों को पता लग जायेगा कि हिन्दू जाति क्यों श्रेष्ठ है? हमारा चाहे सब कुछ छिन जाये, परन्तु आध्यात्मिकता की निधि हमसे कोई नहीं छीन सकता। हममें हीन भावना का सवाल ही नहीं उठना चाहिए। आज भी किसी हिन्दू के लड़के को देखो, वह कर्म, आवागमन, मुक्ति, निर्वाण तथा आत्मा आदि सिद्धान्तों को जानने की तीव्र इच्छा रखता है, क्योंकि ऐसे विचार आरम्भ से ही उसकी घुट्टी में ही दिये जाते हैं। प्रत्येक हिन्दू देवता, अवतार, महात्मा तथा सन्त होने की क्षमता रखता है। ऋषियों की सन्तान ही सही अर्थों में आध्यात्मिक निधि की अधिकारी है।

वैसे देखा जाये तो संसार में प्रत्येक जाति में विवेचनात्मक व सामाजिक अवस्था विद्यमान रहती है। संसार के प्रत्येक स्थान पर बड़ाई-छोटाई देखने में आती है। बड़े बड़ों से सम्बन्ध रखते हैं, छोटे छोटों से। उनके यहाँ बड़ाई-छोटाई की माप धन और मान है, हमारे यहाँ वर्णविवेक और जाति-पाँति हैं। उनके यहाँ यदि कोई कसाई, चाण्डाल, तथा मोची पैसे वाला हो जाये तो वह महाराजा तक की लड़की से विवाह कर सकता है, हमारे हाँ, यह सम्भव नहीं है।

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शूद्र का विभाग किसी अभिप्राय से ही किया गया था। यदि यह न होता, तो सब एक समान होकर सब के सब कब के लोप हो गये होते, जैसे कि औरों की दशा हुई। इसी बन्धन ने हिन्दुओं को किसी न किसी रूप में जीवित रख छोड़ा है। इन चारों

वर्णों के लोग सभी हिन्दू कहलाते हैं। हिन्दू अपने धार्मिक तथा जातीय दुर्ग को सुदृढ़ रखते हुए दूसरों की सहायता करता है, परन्तु साथ-साथ सावधान भी रहता है। जिन लोगों का यह विचार है कि हिन्दू प्रचारक धर्म नहीं है, वे ग़लती पर हैं। मैंने कई बार कहा है कि हिन्दू जाति का संसार में विशेष मिशन है, परन्तु वह अपने मिशन का साधारण मतों की तरह प्रचार नहीं करता। हाँ उसके काम करने का ढग अलग है। वे तुर्क, तातार, पारसी और मुगल आज कहाँ हैं, जो पहिले इस देश के विभिन्न भागों में राज्य करते थे, क्या वे हिन्दुओं में लीन नहीं हो गये! वे स्यामी, भूटानी इत्यादि हिन्दुओं से भिन्न होते हुए भी अब हिन्दू बन गये हैं। हिन्दुओं के मिशन का कार्य सावधानी के साथ होता है जिससे जाति में मिश्रण भी न हो और लोग आध्यात्मिकता से लाभ भी उठाते जायँ।

बुद्ध भगवान् हिन्दू थे। ऐतिहासिक जगत् में इनका धर्म सर्वप्रथम प्रचारक मत था। बुद्ध धर्म स्वयं है क्या? यह शुद्ध और स्पष्ट हिन्दू पन्थ ही तो है और इस दृष्टि से सारे चीनी, जापानी, स्यामी हिन्दू ही तो हैं। परन्तु उनमें वर्णविवेक नहीं है, इसलिये उनको हिन्दू कहने में हम संकोच करते हैं। बुद्ध भगवान् ने भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि की विवेचनात्मक श्रेणियों को स्थापित कर रखा था। उनके जीवित रहते हुए तो कोई विघ्न नहीं पड़ा। तत्पश्चात् शिष्यों ने उनको धक्का पहुँचाना चाहा। अन्त में हिन्दुओं ने सोच-समझ कर इस पन्थ का बहिष्कार किया और उसे देश से निकाल दिया। यदि उनके चेले पदचिन्हों पर चले होते, तो बुद्धमत की यह दशा न होती।

हिन्दू आध्यात्मिकता का लाभ तो हर जाति को देते

हैं, परन्तु सामाजिक अधिकार देने में सावधान रहते हैं। शताब्दियों के पश्चात् अन्य जातियाँ हिन्दुओं में स्वयं मिल गई। लाखों अहिन्दू आज हिन्दू जाति में सम्मिलित हैं।

हिन्दू धर्म एक पूर्ण धर्म है। उसमें ऊँचे से ऊँचे तथा नीचे से नीचे विचारों के अंग विद्यमान हैं। इन सब का मानचित्र खींचना असम्भव है। वेद, ब्राह्मण, दर्शन सूत्रकार, सम्प्रदाई, पन्थाई, शैव, वैष्णव, शक्ति आदि सब ही हिन्दू धर्म की शाखाएँ हैं और इन सब की सम्मिलित और सामूहिक स्थिति को हिन्दू धर्म अथवा सत सनातन आर्य धर्म कहा जाता है। किसी एक को भी इसमें से पृथक् नहीं किया जा जा सकता और जब यह दशा हो, तो उसकी सारी व्याख्यात्मक श्रेणियों पर पार पाना अत्यन्त कठिन कार्य है।

राधास्वामी मत वह क्या समझे, जो निगुरा और अज्ञानी है

सत्संग परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज
मानवता मन्दिर, होशियारपुर 1 जुलाई 1975

शब्द

राधास्वामी मत वह क्या समझे,
जो निगुरा और अज्ञानी है ।
सत तत्त्व सार वह क्या जाने,
गुरुमत नहीं, नहीं गुरु ज्ञानी है ।
कोई लोक लाज में अटका है,
कोई रीति रसम में लटका है ।
अज्ञान से उसने पकड़ी है,
जो लोक में लीक पुरानी है ।
बे ठौर ठिकाने की भक्ति,
क्या देगी उसे सिद्धि शक्ति ।
नहीं सूझी योग यतन युक्ति,
निष्फल सब मानी गुमानी है ।
नहीं नाम की महिमा को जाना,
नहीं नामी पद को पहिचाना ।
तोते की रटन से अटकाना,
सब भूल भरम भरमानी है ।

जप तप में आयु गई सारी,
रहा संसारी का संसारी ।
अपना भी नहीं वह हितकारी,
यह लाभ नहीं है हानि है ।
नीचे नहीं नाम कोई पावे,
ऊँचे चढ़ चौथा पद पावे ।
तब नाम राग की धुन गावे,
वह पृथ्वी नहीं असमानी है ।
नर देह की गति मति को जानो,
जो कहता है उसको पहिचानो ।
निज अनुभव से अपने मानो,
नहीं भरम के फाँस फँसाना है ।
है कर्म इन्द्री नीचे भाई,
ऊँचे ज्ञान इन्द्री जगा पाई ।
मन बुद्धि से जब ऊँचे जाई,
उस विधि तुमको समझाना है ।
तीनों से ऊँचे सुरत रहे,
ऊँचे चढ़ कर वह शब्द गहे ।
इस शब्द में नाम का रूप लहे,
यह नाम महा सुखदानी है ।
नीचे कहाँ नाम का है वासा,
चौथे पद बाँध उसकी आशा ।
त्रिलोक में काल का है फाँसा,
यह मरम तुझे जतलानी है ।
कर शब्द - सुरत का तू साधन,
तब हाथ आयेगा नाम रतन ।
राधास्वामी योग का सीख जतन,
जो यह नहीं भरम कहानी है ।

राधास्वामी !

आज आपने जो शब्द सुना उसको सुनकर मैं अपने आप से प्रश्न करता हूँ, "क्या तूने स्वयं राधास्वामी मत को समझा है और जाना है ? यदि तुमने वास्तव में राधास्वामी मत को समझा है और जाना है, तो तुम बताओ कि उससे तुम्हें क्या मिला ?"

राधास्वामी मत को वह क्या समझेगा जो निगुरा और अज्ञानी है। निगुरा कौन होता है ? लोग कहते हैं जिस व्यक्ति ने गुरु धारण नहीं किया, वह निगुरा है। गुरु तो संसार में बहुतों ने धारण किया हुआ है। मैं पूछता हूँ कि जिन्होंने गुरु धारण किया हुआ है क्या वे निगुरे नहीं हैं, क्या वे अपनी मंज़िल तक पहुँच गये हैं ? नहीं, ऐसी बात नहीं है। वास्तव में निगुरा तो वह है, जिसने गुरु धारण करके भी गुरु की बात को नहीं समझा और उसकी शिक्षा पर अमल नहीं किया। केवल गुरु को धारण कर लेने या मान लेने से ही तुम गुरुपरायण नहीं हो जाते। जिसको समझ नहीं, वह अज्ञानी है गुरु नाम है ज्ञान, विवेक और अनुभव का। जो सार ज्ञान, सार अनुभव और सार विवेक को समझ कर अपना जीवन व्यतीत करता है केवल वही गुरु वाला है। केवल किसी आदमी को गुरु मान कर, उसके प्रेम में जीवन व्यतीत करने वाला गुरु वाला नहीं है। यदि किसी ने गुरु की बाहर की देह को प्यार करके अपना जीवन व्यतीत कर दिया और किसी ने अपनी स्त्री और बच्चे से प्यार करके जीवन व्यतीत कर दिया, तो दोनों में अन्तर क्या है ? गुरु के शरीर को प्यार करने वाला भी मोह में फँसा है और स्त्री और पुत्र को प्यार करने वाला भी मोह में फँसा है।

मैं आपको यह नहीं कहता कि आप मुझे गुरु मानो,

मेरी बात को सत्य मानो। मैं तो अपना कर्म भोगता हूँ। मैंने क्योंकि यह प्रण किया था कि जो मुझे जीवन में अनुभव होगा उसे बता जाऊंगा, इसलिये यह मेरा कर्मभोग है मुझे न गुरु बनने की, न गुरु कहलाने की हवस है। मैं तो मालिक को मिलने निकला था और चौबीस घण्टे रोने के बाद एक दृश्य मुझे हजूर दाता दयाल जी महाराज के पास ले गया। उन्होंने मुझे सन्तमत में लिया।

सत तत्त्व सार वह क्या जाने, गुरु मत नहीं नहीं गुरु ज्ञानी है
कोई लोक लाज में अटका है, काई रीति रसम में लटका है।
अज्ञान से उसने पकड़ी है, जो लोक में लीक पुरानी है।

लोग गुरुमत में शामिल हो जाते हैं। जैसे गुरु कपड़े पहनता है वैसे ही कपड़े पहनने लगते हैं, वैसे ही केश, दाढ़ी, मूँछ रख लेते हैं और भेसधारी बन जाते हैं। मैं अपने आप से पूछता हूँ, "फकीर तुमको क्या मिला?" दोस्तो! मिलना क्या था। लोग कहते हैं कि मेरा रूप उनके अन्दर प्रकट होता है और मेरे रूप ने यह कर दिया, वह कर दिया। लेकिन मैं तो वहाँ होता ही नहीं और न ही मुझे इसका कोई पता होता है। इस बात से यह स्पष्ट हो गया कि जो कुछ भी किसी के अन्दर प्रकट होता है, असल में वह होता नहीं, मगर भासता है। वे तो केवल संस्कार होते हैं, जो आदमी के मस्तिष्क पर पड़े हुए हैं। जब से मुझे यह बात समझ में आ गई, तो मैं मन के विचारों, भावों, संकल्पों और शक्लों को छोड़कर, मन के परे जाता रहता हूँ। आगे क्या होता है? यह संसार नहीं भासता। अभी-२ समाधि से उठा हूँ। जब तक मैं समाधि में था, तो मुझे यह पता नहीं था कि मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ और क्या हूँ। मेरे अन्दर एक चेतना (consciousness) है, जो इस चेतनपने के बोध को महसूस

करती है। उसमें कोई चिन्ता, कोई वासना या इच्छा नहीं होती। जब वह चेतनापना शरीर, मन, बुद्धि, रूप, रंग और शक्लों, प्रकाश और शब्द को छोड़ जाता है, तो उसके बाद जो कुछ शेष रह जाता है, यदि वह राधास्वामी है, तब तो वह मुझे प्राप्त है, अन्यथा नहीं। यदि कोई और राधास्वामी नाम है, तो वह हजूर दाता दयाल जी महाराज जानते होंगे, मुझे नहीं पता।

बे ठौर ठिकाने की भक्ति, क्या देती उसे सिद्धि शक्ति।
नहीं सूझी योग यतन युक्ति, निष्फल सब मानी गुमानी है॥

यदि आज हजूर दाता दयाल जी महाराज होते तो मैं उनसे प्रार्थना करता कि अन्य भक्तियाँ निष्फल क्यों हैं। मेरे पास कोई प्रमाण तो है नहीं। मगर मैं इतना कह सकता हूँ कि हिन्दू भगवान् को मानते हैं "अन्तमता, सो गता" के अनुसार यदि शरीर त्यागते समय किसी का मन किसी स्थान पर लगा हुआ है या अटका हुआ है, तो उसका फिर जन्म होना जरूरी है और दूसरा जन्म होना भी चाहिए। जीवन में जिस शक्ल, विचार और रूप को सत माना जाता है वह अन्त समय मनुष्य के सामने आता है। क्योंकि ऐसा मनुष्य मन के चक्कर में होता है इसलिये उसकी वासना के अनुसार ही उसका दूसरा जन्म अनिवार्य है। सन्तों का मार्ग निवृत्ति का मार्ग है। सन्तों ने अपनी खोज तथा अनुभव के बाद यह कहा है कि यदि आप जन्म-मरण के बन्धन से बचना चाहते हैं तो मन छोड़कर मन से आगे शब्द और प्रकाश में चले जाओ। मन को छोड़ जाने के बाद, मरने वाले के सामने जब प्रकाश और शब्द ही आयेगा, तो वह कहाँ जायेगा? इसका कोई पता नहीं और न ही कोई दावा है, केवल दलील ही दलील है। इसलिये मेरी यह इच्छा है

कि मालिक मुझे शक्ति दे और मैं शरीर छोड़ने के बाद यह बता सकूँ कि मैं कहाँ गया हूँ। आज तक तो मैं समझता हूँ कि सन्तों की यह खोज और अनुभव है और मेरी भी यह खोज है। पता नहीं यह ठीक है या गलत। इसलिये मैं कहता हूँ कि मेरी खोज अभी तक अधूरी है।

अभ्यास के समय, मैं यह समझ कर समाधि में जाता हूँ कि मैं अब मर रहा हूँ। शरीर, मन, प्रकाश, और शब्द से आगे चला जाता हूँ, लेकिन शरीर के बाहिर तो निकलता नहीं। इस अनुभव को लेकर राधास्वामी मत वालों ने लोगों को अपने पीछे लगाने के लिए, यह अपना मत चलाया। किसी को कोई पता नहीं कि मरने के बाद कोई कहाँ जाता है। किसी के पास कोई प्रमाण नहीं। कहते हैं कि "सन्त ज्योति जोत समाये"। लेकिन इसका भी प्रमाण किसी के पास नहीं है। बल्कि उनके अनुयायी तो यह सिद्ध करते हैं कि ज्योति जोत नहीं समाये। जो सन्त ज्योति जोत समा गये, उनके बारे में भी लोग कहते हैं कि वह साक्षात् रूप में उनके अन्तर में आये और यह कहा, वह कहा। सन्त कृपाल सिंह जी कहा करते थे, "मेरे अन्तर हजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज आते हैं और मुझे सन्देश दे जाते हैं।" यदि इस बात को सत्य मान लिया जाय तो इससे यह सिद्ध होता है कि हजूर सावन सिंह जी महाराज का आवागमन समाप्त नहीं हुआ, वह तो अभी तक यहाँ बने हुए हैं और अपने चेलों के अन्तर में जाते हैं। इसलिये मेरी खोज भी अभी अधूरी है। सन्तों का मार्ग केवल भवसागर से पार जाने का ही है। मैं तो यह कहता हूँ कि बाहर से कोई किसी के अन्तर में नहीं जाता। जब मैं जीवित बैठा हुआ किसी के अन्तर नहीं जाता, तो मैं यह कैसे मानूं कि कोई मरा हुआ

गुरु किसी चेले के अन्दर प्रकट होता है। यह भ्रम है, अज्ञान है। इसलिये ही सन्तों ने कहा है :—

आप आपको आप पहचानो, कहा और का नेक न मानो।

अपना अनुभव मुख्य है। कोई कहता है कि उसके अन्दर राम प्रकट होता है, कोई कहता है कृष्ण और किसी के अन्दर गुरु प्रकट होता है। यह सब मन का खेल है, मन का चक्कर है। क्योंकि जीव मन के चक्कर से बाहर नहीं निकला। इसलिये जीवन में वह जो जप, तप तथा भक्ति करता रहा, वह सब निष्फल गई। क्योंकि जो भक्ति उसने की, वह ठौर-ठिकाने की भक्ति नहीं थी। असली गुरुभक्ति क्या है? किसी पूर्ण पुरुष के सत्संग में जाकर, उसके वचनों को सुनना और उन पर अमल करना। मैं निर्भय होकर कहना चाहता हूँ कि इस समय का जितना गुरुवाद है, यह सब का सब जीवों को अपने जाल में फँसाने का यत्न करता है। कोई सच्चाई नहीं बताता। मगर सच्चाई यह है कि इनका भी कोई दोष नहीं है। संसारी लोगों को सत्यता की आवश्यकता नहीं है। संसार वालों को तो संसार चाहिए।

नहीं नाम की महिमा को जाना, नहीं नामी पद को पहचाना।

नाम की महिमा और नामी पद क्या है? जब मैं इस बात को समझ गया, तो फिर जो धुन मेरे अन्दर प्रकट होती है, वह किससे निकलती है? असल में, जो मैं हूँ उसकी गति से ही धुन निकलती है। तो फिर नामी पद क्या हुआ? हमारा अपना ही आपा। हमारे अन्दर से ही नाम निकलता है। हमारे अन्तर में, जो सबसे ऊँची आवाज़ है, वह हमारी अपनी ही खोपड़ी से निकलती है। मैंने तो यह समझा है नाम को।

तोते की रटन से अटकाना, सब भल भरम भरमानी है।

सारा जीवन ज़बान से या मन से राम-राम, राधास्वामी-राधास्वामी जपते रहना या पाँच नाम का जाप करते रहना तोते की रटन ही है। इससे कुछ बनता नहीं है। क्योंकि इससे हमारी आत्मा को कहीं ठहरने का अवसर ही नहीं मिलता और ठहराव न होने के कारण शान्ति मिल ही नहीं सकती। गति में चैन नहीं है। जब तुम काम करते-२ थक जाते हो तो आराम करने के लिए लेट जाते हो। यह लेटना थकने के बाद ही आता है और यह बिलकुल स्वाभाविक है। जब तुम थके हुए नहीं होते तो लेटने पर भी तुम्हें नींद नहीं आती, बल्कि बेचैनी होती है। ऐसे ही शारीरिक, मानसिक और आत्मिक जीवन को आराम या शान्ति देने के लिए सन्तमत की शिक्षा है। मरने के बाद क्या होगा? पता नहीं। शरीर छोड़ने के बाद यदि आपको कुछ बता सका, तो बता जाऊंगा :—

जप तप में आयु गई सारी, रहा संसारी का संसारी।
अपना भी नहीं वह हितकारी, यह लाभ नहीं है हानी है।

संसार क्या है? सम् और सार। वह जो हमारा असली रूप है, जिसमें से शब्द प्रकट होता है, उसके सामने जो कुछ भी आता है, वह है संसार। जब तक आदमी कर्म, धर्म, जप, तप और तीरथ, व्रत करता रहेगा, तो वह संसार में ही है, क्योंकि गुरुरूप भी और शब्द भी और प्रकाश भी उसके अपने आप से ही तो निकलता है। इसी कारण सन्तों ने कहा है :—

भक्त उपासक योगी ज्ञानी, इन सब चक्कर खाया।

ये सब अपने संसार से बाहर नहीं गये और संसार में ही रहे। योगी जिस पर ध्यान जमाता है, वह उसका संसार है। ज्ञानी जिसका विचार करता है, वह उसका संसार है

और भक्त, जिसकी भक्ति करता है वह भी उसका अपना संसार है। इसलिये किसी ने भी अपना भला नहीं किया। अपने आप में वापिस चले जाना ही अपना भला करना है। मैं बारह साल के बाद बसरे बग़दाद से अपने घर वापिस आया। आया कि नहीं। यह तो सांसारिक जीवन की बात है, मैं तो आद घर जाना चाहता था। जो आदमी यह समझ जाता है कि संसार में कहीं भी सुख नहीं है, उसके लिए सन्तमत है, सबके लिए नहीं :—

विषयों से जो होय उदासा, परमारथ की जा मन आसा।
धन सन्तान प्रीत नहीं जाके, खोजत फिरे साध गुरु जागे।

बिना थकावट के आराम करने की नहीं सूझती। जब थक जाओगे, तभी ही आराम की सूझेगी। इसलिये आम लोगों के लिए नामदान नहीं है। पहिले काम करो। शरीर और मन को थकाओ, आनन्द लो और फिर रूह को थकाओ जब तीनों में थकावट आ जायेगी, फिर ही आराम की ओर जाओगे। कबीर साहिब कहते हैं :—

मन तू थकत थकत थक जाई।
बिन थाके तेरो काम न सरि है, फिर पाछे पछताई।
जब लग तोकर जीव रहतु है, तब लग परदा भाई।
टूटि जाय ओट तिनका की, रसक रहै ठहराई।

इसलिये सन्तमत में मनुष्य को सबसे पहिले प्रवृत्ति मार्ग में लगाया जाता है, ताकि वह खूब काम करे, खूब काम करे। जब वह काम करते-२ थक जायेगा तो अपने आप ही निवृत्ति मार्ग पर जायेगा। परन्तु आजकल गुरु लोग क्या करते हैं? जो भी आया उसको नाम, जो भी आया उसको नाम।

राधास्वामी मत वह क्या समझे, जो निगुरा और अज्ञानी है।

एक छोटा बच्चा खेलता है। माँ उसको बुलाती है, वह नहीं आता, वह खेलना चाहता है उसको खेलने दो। जब वह थक जायेगा, तो अपने आप आ जायेगा। इसलिये मैंने किसी को चेला नहीं बनाया। पहिले इस संसार में खूब काम करो, नेकी करो, परोपकार करो, ग़रीबों और अधिकारियों की सहायता करो। जब थक जाओगे, तो अपने आप परमार्थ की ओर आ जाओगे। सन्तमत की शिक्षा सब के लिए नहीं, केवल अधिकारियों के लिए ही है। जब थक जाओ, तो फिर किसी गुरु के पास जाओ।

नीचे नहीं नाम कोई पावे, ऊँचे चढ़ चौथा पद पावे।
तव नाम राग की धुन गावे, वह पृथ्वी नहीं असमानी है।

मैंने जीवन में बहुत कुछ किया और बहुत दौड़ा। अब बूढ़ा हो गया हूँ और शारीरिक और मानसिक तौर से भी थक गया हूँ। इसलिये मेरा परमार्थ की ओर आना अनिवार्य है। आप लोग भी पहिले बढ़ो। संसार में, अकली तौर से, शारीरिक तौर से, आर्थिक रूप से और मान-प्रतिष्ठा की ओर से उन्नति करो। जब थक जाओगे, तो इस ओर आओगे। राधास्वामी मत निवृत्ति मार्ग है, कोई राजनैतिक नहीं। इसके अधिकारी बहुत ही कम हैं।

नर देह की गति मति को जानो,
जो कहता हूँ उसको पहिचानो।
निज अनुभव से अपने मानो,
नहीं भरम के फाँस फँसाना है।

मानव को शरीर काम करने के लिए मिला है, मन अच्छी बातें सोचने के लिए और आत्मा आनन्द लेने के लिए। खूब आनन्द लो, सुख भोगो फिर धीरे-२ अपने आप इस ओर आ जाओगे। हरएक वस्तु का भोग भोगना पड़ता

है। बगैर भोगे के भी शान्ति नहीं मिलती। अपने जीवन के अनुभवों से लाभ उठाओ। जो व्यक्ति अपने जीवन के अनुभवों से लाभ उठाता है, वह जीवन में सफल होता है। दूसरों के अनुभवों से तो आपको केवल अकली ज्ञान ही मिलता है। बाहर का गुरु जीव को ऐसी राय देता है, जिससे उसको जीवन में अनुभव हो जाय और उसे शान्ति मिले। पिछले समय में साफ-२ कहने का दस्तूर नहीं था। इसलिये दाता दयाल जी महाराज की बात मुझे कभी-२ समझ में नहीं आती थी। उन्होंने मुझे सत्संगियों का यह काम सार भेप देने के लिए तथा मेरा कल्याण करने के लिए ही दिया था। इस काम के करने से मैंने अपने जीवन में अपने ही अनुभवों से स्वयं लाभ उठाया।

है कर्म इन्द्री नीचे भाई, ऊँचे ज्ञान इन्द्री जगा पाई।
मन बुद्धि से जब ऊँचे जाई, इस विधि तुमको समझाना है।

कर्मेन्द्रयाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ अपना-२ काम करती हैं। जब इनसे तुम थक जाओगे, तब इस ओर आओगे। गुरु क्या समझ देता है? वह यह समझ देता है, "ऐ मानव! यह जो कुछ भी है, वह तेरा अपना ही रूप है।" मगर इस बात की समझ जल्दी नहीं आती। जब तक खेलते-२ कोई थक नहीं जाता, वह तो खेलेगा ही।

तीनों से ऊँचे सुरत रहे, ऊँचे चढ़ कर वह शब्द गहे।
इस शब्द में नाम का रूप लहे, यह नाम महा सुखदानी है।

नाम सुखदानी है। सारा दिन काम करने के बाद, जब तुम थक जाते हो, तो तुम्हें ऐसी नींद आती है कि दोन-दुनिया की कोई सुध नहीं रहती। वही सुरत है। ऐसे ही शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोझ-भावों के समाप्त हो जाने के बाद, जो अवस्था होती है, उसका नाम परम-

सुख है, परमशान्ति है।

नीचे कहाँ नाम का है वासा, चौथे पद बाँध उसकी आशा।

नाम वह अवस्था है, जहाँ तुमको परमसुख और परम-शान्ति मिले। शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बोध-भानों को भूल जाने के बाद, जो परमसुख और परमशान्ति मिलती है उसका ही नाम है "नाम"।

त्रिलोक में काल का है फाँसा, यह भरम तुझे जतलानी है।

काल है समय। समय में गति होती है। जहाँ गति है वहाँ तुम किसी वस्तु को भूल नहीं सकते; न शरीर को भूल सकते हो, न मन को और न ही प्रकाश को।

कर शब्द सुरत का तू साधन, तब हाथ आयेगा नाम रतन।
राधास्वामी योग का सीख जतन, जो यह नहिं भरम कहानी है।

यदि तुमको यह भेद नहीं मिला, तो तुम राधास्वामी मत को नहीं समझे। मैंने जो समझा है, उसको मेरी बुद्धि मानती है, इसलिये ही मैं यह काम करता हूँ।

सबको राधास्वामी!

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप सत्संगी भाइयो और बहनो ! अभी मैंने संस्कृत में तीन श्लोक पढ़े। पहिले श्लोक का अर्थ है कि गुरु ब्रह्मा है। ब्रह्मा क्या है ? ब्रह्मा वह सृजन-शक्ति है जो इस सृष्टि की रचना करती है। यह शक्ति मनुष्य में भी है, जो उसमें ब्रह्मचर्य के रूप में विराजमान है। यदि ब्रह्मचर्य ठीक है, तो आगे जो सृष्टि होगी, वह स्वस्थ, समृद्ध और बलशाली होगी। उसको नमस्कार ! जब गुरु को ब्रह्मा के रूप में नमस्कार करते हैं, तो हम उसके प्रति सादर श्रद्धाभाव प्रकट कर रहे होते हैं। गुरु में विष्णु का रूप भी है। विष्णु वह शक्ति है, जो हम सभी को बनाये रखती है। सृष्टि होने के अनन्तर उसके पालन-पोषण का भी प्रबन्ध आवश्यक है। बनाये रखने वाली वह शक्ति, हमारे अन्दर संकल्प है। यदि विचार ठीक होंगे तो वे आगे ज्ञान-प्राप्ति का साधन बनेंगे। विचार उत्तम होने आवश्यक हैं। विचार शुद्ध रखना चाहिए। इसीलिये विष्णु को भी गुरु का रूप माना है। विचार-शक्ति होने के कारण मनुष्य ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है। आगे 'गुरुर्देवो महेश्वरः' है, महेश्वर हमारे अज्ञान को नाश करने वाले हैं। ज्ञान के दाता महेश्वर स्वयं शिव होने के कारण, सबका कल्याण करते हैं क्योंकि मनुष्य का कल्याण ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। वही ज्ञान पुनः मोक्षप्राप्ति का साधन बनता है इसीलिये शिवजी को भी गुरु कहा गया है। उनको नमस्कार !

गुरु ये तीन ही नहीं, वह इससे भी परे हैं। "गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥" अर्थात् वह परब्रह्म ! परमतत्त्व है। ज्ञान प्राप्त होने पर, मनुष्य का लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति है, जो कि उस पारब्रह्म परमेश्वर, उस आदिशक्ति

के चिन्तन, ध्यान से उपलभ्य है, यही मनुष्य की चरम अवस्था है अतएव उस आदि शक्ति को भी गुरु माना गया है ताकि मनुष्य अपनी आदि अवस्था को प्राप्त कर सके। ऐसे गुरु को भी नमस्कार !

दो श्लोक और जो मैंने बोले "मस्तरामसुतं देवं" अर्थात् श्री मस्तराम जी के पुत्र मनोहर कान्तियुक्त के रूप में पैदा हुए। 'फकीरचन्दं पण्डितम्' यानि कि फकीर चन्द जिनका नाम है। "परमसन्तं दयालं च तं नमामि जगद्गुरुम्" अर्थात् वह जो परमसन्त हैं, परमदयालु हैं। दीनों पर दया करने वाले हैं और जगद्गुरु हैं। आगे का श्लोक है—'मानव-धर्मस्य धातारं' अर्थात् मानव धर्म को धारण करने वाले हैं। उन्होंने ही बताया कि सन्तमत असल में मानव-धर्म है। उस मानवता के धर्म को शुरू तो दाता दयाल जी ने किया था, लेकिन वास्तविक रूप में साक्षात्कार परम दयाल जी ने ही कराया, आधारशिला रखी। 'दातादयालस्य प्रियतमम्'—जो दाता दयाल जी के सबसे प्रिय पात्र हैं। इसलिये दाता दयाल जी ने कहा था "सबसे ज़्यादा मुझको तुम पर नाज़ है।" फिर है 'सन्तधर्मस्य गोप्तारं' अर्थात् सन्त धर्म के रक्षक। जो यही बताने वाले हैं कि असली सन्त धर्म, सन्तमत क्या है ? 'फकीरं वन्दे जगद्गुरुम्' ऐसे परम-सन्त परम दयाल फकीर चन्द जी महाराज के श्री चरण-कमलों में नमन करता हूँ।

शब्द

धन्य धन्य दयाल सतगुरु, दीन हितकारी महा।
चरन कमल की ओट गहकर, भक्त परमानन्द लहा॥
आप प्रगटे इस जगत् में, जीव के उपकार को।
निज दया से नाम देकर, किया जीव सुधार को॥

कर्म धर्म और भरम और अज्ञान, दुःख के मूल थे।
यह हैं काँटे कष्ट के और, जीव समझे फूल थे॥
शब्दयोग की आप ही ने, आप दी शिक्षा हमें।
सुगम रीति से मिल गई, भव तरन की दीक्षा हमें॥
राधास्वामी सतगुरु, करुणा सदन दे नाम दान।
सहज में हमको उबारो, बख्शो अपना सत्य ज्ञान॥

इस शब्द में दाता ने कहा है कि गुरु साक्षात् मनुष्य रूप में आते हैं। राधास्वामी गुरु आये, शालिग्राम जी, दाता दयाल जी और परम दयाल जी आये। दीनों के हित के लिए ही, परमतत्त्व अवतार लेते हैं। अवतार कहाँ से आता है? परमतत्त्व से। परमतत्त्व जो था, या है वह तो अनादि, अनन्त-काल से चला आ रहा है। यह समझने की बात है जो परमतत्त्व है वह हर काल में, हर युग में और हर क्षण के अन्दर अवतारी है।

परम दयाल जी महाराज क्या कहते हैं कि उनके जीवन ने पलटा खाया। क्यों खाया? क्योंकि उनको यह चाह थी कि मालिक को मनुष्य के रूप में देखें। उन्होंने मालिक को राम के रूप में देखा लेकिन संतुष्ट नहीं हुए। राम का रूप उनको प्रकट हुआ, भगवान् कृष्ण का रूप प्रकट हुआ। प्यारे सुभाष! जो आपको अनुभव होता है किसी भी रूप का, सगुण रूप का, चाहे वह छोटे स्तर का हो या बड़े स्तर का, क्या वह रूप नहीं होता? होता है यह है तो सच लेकिन कई लोग उसी रूप के स्तर तक ही रह जाते हैं आगे नहीं बढ़ते।

धर्म, कर्म की जो बातें लिखी हुई हैं, उनको ध्यान में रखते हुए मैं उनकी व्याख्या कर रहा हूँ। एक बहुत सरल, सीधी बात बताऊँ आप लोगों को कि एक है शक्ति या काल-

माया का ज्ञान और दूसरा है मालिक का ज्ञान, सत्य का ज्ञान या दयाल का ज्ञान, परमतत्त्व का ज्ञान। ये दो ही ज्ञान हैं, इनके सिवाय और कोई ज्ञान नहीं है। ये जो दोनों ज्ञान हमें आज मिले हैं, ये कई सदियों से चले आ रहे हैं। लेकिन यह ज्ञान धीरे-धीरे विकसित होता है। पहिले कुछ फिर उससे कुछ ज्यादा, फिर कुछ उससे ज्यादा, फिर कुछ उससे ज्यादा। लोग इसे ग्रहण करते हैं। मालिक इसी ज्ञान को बढ़ाता चला गया है, अनुभव बढ़ता गया। उदाहरण के रूप में जैसे—ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता है उसको ज्यादा-से-ज्यादा ज्ञान दिया जाता है, इसको अंग्रेज़ी भाषा में Evolution अर्थात् विकास कहते हैं।

तो इसका मतलब यह है कि जो ज्ञान हमें इस प्रकृति के बारे में, शक्ति के बारे में मिला है, हमारे युग में वह धीरे-धीरे बढ़ा है उसका विकास हुआ है। क्यों? बताऊँ! उसकी मिसाल देता हूँ, अब यहाँ पर अगर बीस हज़ार साल पहिले कोई व्यक्ति होता, कोई भी मनुष्य होता या था। अच्छा बीस हज़ार साल छोड़ो, पाँच हज़ार साल पहिले की बात ही मानो, तो वह तो था ही, उससे पहिले भी था, तो यहाँ पर और भाखड़ा तथा नंगल में बिजली की ताकत (Power of Electricity) तो तब भी थी यानि कि मौजूद थी। परन्तु बिजली की इस ताकत को, एक तरीके से इस्तेमाल Technique of Utilization) करने का ज्ञान नहीं था। उस समय ये बत्तियाँ नहीं थीं, ये पंखे नहीं थे, ये रेफ्रिजिरेटर नहीं थे, नहीं थे न! तब क्या हुआ? धीरे-धीरे जब उसका ज्ञान हमें मिला या मिल गया, आज हम उसी शक्ति को इस्तेमाल करते हैं।

मैं क्या कह रहा हूँ कि सन्तमत ठीक है, इसका विकास हुआ। सन्तमत का दर्जा बहुत ऊँचा है, लेकिन इसका यह

अर्थ कदापि नहीं कि सन्तमत के आने से ही वह परमतत्त्व आया। परमतत्त्व तो पहिले से ही था। अभी मैंने बिजली के बारे में कहा कि वह पहिले भी मौजूद थी ठीक उसी तरह से परमतत्त्व भी मौजूद था। हर युग के अन्दर, उस युग की ज़रूरत के मुताबिक, मालिक अवतार लेता है।

मैं एक बात समझाने की कोशिश कर रहा हूँ वह यह कि स्वामी जी महाराज, शालिग्राम जी महाराज, दाता दयाल जी महाराज, परम दयाल जी महाराज और नन्दू भाई जी महाराज भी क्यों अलग हैं? क्योंकि हरएक समय के मुताबिक वही ज्ञान धीरे-२ विकसित हो रहा है और इनके माध्यम से प्रकट हो रहा है वह परमतत्त्व, वह सत्य, समय की ज़रूरत के मुताबिक अवतरित होता है। इसी बात को, श्रीमद्भगवद्गीता में जो लिखा हुआ है :—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥"

जब-२ धर्म की हानि होती है और अधर्म बढ़ जाता है तब मैं स्वयं जन्म लेता हूँ।

भगवान् श्री कृष्ण परमतत्त्व को प्राप्त थे यानि कि परमतत्त्वावतार थे। ये दाता दयाल जी महाराज के शब्द हैं, यह मैं नहीं कह रहा हूँ, क्योंकि मैं कहूँ तो लोग कहेंगे शायद कि मैं सन्तमत को जानता ही नहीं। दाता दयाल जी ने लिखा है भगवान् कृष्ण परमपुरुष थे। उनसे किसी ने प्रश्न किया कि क्या यह बात सही है कि अर्जुन को भगवान् श्री कृष्ण ने विराट् रूप दिखाया? दाता दयाल जी ने उत्तर दिया कि सही है, समझने की बात है। क्योंकि वह परमपुरुष थे इसलिये उन्होंने विराट् रूप दिखाया।

जब-जब धर्म की हानि होती है और जब-जब अधर्म

बढ़ता है उस समय अवतार होता है। अवतार दो किस्म (प्रकार, kind) के होते हैं ; एक तो जब दुष्टों का अत्याचार बढ़ता है तब होता है, कृष्ण का अवतार, राम का अवतार इत्यादि। दूसरा तब, परम दयाल जो महाराज कहते हैं, जब धर्मप्रचार करने वाले ही ग़लत रास्तों पर लोगों को चलाने लगते हैं बेचारों को लूटने लगते हैं तब सन्त का अवतार होता है, इसलिये तुलसी दास जी ने कहा है :—

"नाना विधि राम अवतारा ।
रामायण शत कोटि अपारा ॥"

इसी बात को ध्यान में रखते हुए ; संस्कार मिले हुए थे परम दयाल जी को उन्होंने भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन भी किये। कितने आदमी हैं यहाँ पर जिन्होंने भगवान् कृष्ण का दर्शन किया हो मुझे भी बताओ ? किये ? महाराज जी ने दर्शन किये और फिर भी उनको सन्तुष्टि नहीं हुई, वह मालिके कुल को मनुष्य के रूप में देखना चाहते थे।

प्रसंगवश मैं यहाँ एक पिछली घटना का आपसे ज़िक्र करता हूँ। मैंने पिछली दफे महाराज जी को एक चिट्ठी में लिखा "आप यहाँ (अमेरिका) नहीं आयें, अगर आप आयें तो डा० परसराम जी को साथ लेते आयें।" लेकिन उन्हें परसराम जी को लाना नहीं था, वह नहीं लाये। उन्होंने मुझे खत का जवाब लिखा "मैं आ रहा हूँ। वहाँ बड़े कुशल, अनुभवी, अच्छे डाक्टर हैं। प्रकृति को जो कुछ भी काम जिससे लेना है वह लेती है भले वह तुमसे या मुझसे ले, लेकर रहेगी।"

महाराज जी को जब भगवान् श्री कृष्ण मिल गये होंगे, तो उनके हृदय में आता होगा कि जो मैं चाहता था वह मिल गया। तब भगवान् कृष्ण का रूप उन्हें कहता है कि

यह गोबर खा लो। उन्होंने गोबर खा लिया। जब रूप अन्तर्धान हुआ तब वह सोचने लगे कि यह क्या? कृष्ण जी ने मुझे गोबर खाने को कहा, यह तो कृष्ण नहीं हो सकते। क्योंकि जहाँ तक, जो इन्होंने भक्तों की कथाएँ पढ़ी थीं उनमें गोबर खाने की बात कहीं नहीं लिखी थी। मैंने उनसे जब यह बात कही। 'ऐसे भक्त गुजरात में हुए हैं पहिले, जिनकी भगवान् श्री कृष्ण ने गोबर खाने की परीक्षा ली, उन्होंने गोबर खाया।" अगर पिता जी (परम दयाल जी) को यह ज्ञान पहिले से होता तो वह भी 'श्री कृष्ण' 'कृष्ण'-'कृष्ण' करते, फिरते रहते—लेकिन उनको तो कृष्ण से आगे जाना था। फकीर होना था। यह मालिक की मर्जी थी कि उनको यह ज्ञान बाद में हो, अगर उनको इस बात का पता होता कि गोबर खाने वाली बात हो चुकी है, तो वे वहीं पर ठहर जाते। आगे का ज्ञान बढ़ता नहीं, यह भेद खुलता नहीं उन्होंने जो खोला है। अच्छा हुआ कि उन्होंने यह पहिले नहीं जाना। लेकिन वह 'शिवसंकल्पमस्तु' कहते रहते थे।

"धन्य धन्य दयाल सतगुरु दीन हितकारी महा।"

अर्थात् परमतत्त्व तो इतने दीन-हितकारी हैं कि वह हर युग में, हर युग के लोगों के मुताबिक, लोगों की बौद्धिक-क्षमता के मुताबिक और लोगों की ज़रूरत के मुताबिक हितकारी, अवतार लेते हैं। यह बात रामायण में लिखी है कि दीनों के हित के लिए जन्म लिया श्री राम ने, यही बात श्री कृष्ण अवतार के लिए भी आती है और यही बात राधा-स्वामी दयाल जी महाराज के बारे में है। यह इसलिये है कि बहुत से तरीकों पर चलते हुए या हर युग की मालिक के पास जाने की, मिलने की रीति अलग-अलग है। सबसे पहिले सतयुग में तपश्चर्या (तपस्या) की रीति थी, फिर त्रेतायुग

में यज्ञादि (कर्मकाण्ड) को किया जाता था और द्वापर युग में उपासना की विधि थी। लेकिन इस युग अर्थात् कलियुग में नाम ! एक मात्र साधन, नाम ही है। कलियुग की रीति बहुत सीधी, सरल बनाई है, लेकिन कुछ लोगों ने फिर उसमें घुंडी (चक्कर) डाल दी। कई लोग चाहते हैं कि लोग घुंडी (चक्कर) वाले रास्तों में चलें। बड़ी-बड़ी फिलासफी झाड़ते (बांचते) हैं। नाम की रीति (विधि, Methods) जो है, वह इस युग में बड़ी सरल रीति है। हाँ, सिर्फ सुमिरन भी अच्छा है, सीधे रूप में सुमिरन भी बराबर, धीरे-धीरे 'राम-'राम'-'राम' या 'राधास्वामी'-'राधास्वामी'-'राधा-स्वामी' कहना भी अच्छा है, सन्त ताराचन्द जी ने कितने धड़ल्ले से कहा था—"आप लोग यहाँ आते हैं, जिसको इतना विश्वास हो जाता है कि मालिक का नाम लेने से मालिक आता है, उसका आना सफल है।"

"राम से बड़ा राम का नाम,
राम से बड़ा राम का नाम।
अन्त में यही पाया परिणाम,
राम से बड़ा राम का नाम।
लाँघ सके ना बिना सेतु के,
जिस समुद्र को राम।
कूद गये हनुमान उसी को,
लेकर राम का नाम।
राम से बड़ा राम का नाम।"

मेरे कहने का मतलब यह है कि नाम जो है उसको बड़े विश्वास से लिया जाय। कलियुग में 'नाम' जिस नाम को देने के लिए स्वामी जी आये और उस नाम की सबसे सीधे-सादे रूप की परम दयाल जी महाराज ने व्याख्या की है

वह नाम असल में वही नाम है जो हमारी 'कमालपुर वाली माई' के पास था। वह ऊपर पहुँच चुकी है। जब वह नाम आ जाता है तब फिर नाम लेने की ज़रूरत नहीं रहती।

"चरन कमल की ओट गहकर, भक्त परमानन्द लहा।"

चरण-कमल की ओट में रहकर। चरण-कमल की ओट! जब चरण-कमल की ओट मिल गई तब फिर भय किसका! "जब सैयाँ भये कोतवाल तब डर काहे का।" सैयाँ मानो न उसको। जब आप सद्गुरु को मान लेते हैं सही तरीके से, तब फिर कोई चिन्ता नहीं रहती। परमानन्द! एक तो मैं दुनिया की दृष्टि से कह रहा हूँ आपको, परम आनन्द कब होता है, जब आपको कोई फिक्र नहीं, बेफिक्री है। बहुत लोग कहते रहते हैं—"मौज-ए-मालिक", "मौज-ए-मालिक" और काम ऐसा करते हैं जो नीच-से-नीच आदमी भी नहीं करता है। ऐसी है मौज-ए-मालिक? जैसे वाचक वेदान्ती होते हैं वैसे ही वाचक, मौज-ए-मालिक कहने वाले भी बहुत हैं। मैं सच्ची बात कहता हूँ, "मौज-ए-मालिक", "मौज-ए-मालिक" रट रहे हैं लेकिन प्रेम है नहीं भीतर।

इसलिये चरण की ओट जिसको हो जाती है, जिसको "मौज-ए-मालिक" की ओट हो जाती है, उसके सभी काम मालिक ही करता है। यह सच्ची बात है। चक्कर यही है कि जब तक हम सोचते रहते हैं, नाम तो लेते रहते हैं लेकिन ध्यान तो कुछ और रहता है। पुराणों में हमारे पौराणिक कथा एक गज की है और मगरमच्छ की है। बड़ी सच्ची और समझाने वाली है। हाथी जो था वह विष्णु का भक्त था। एक दिन गंगा में जल पीते समय एक मगरमच्छ ने हाथी को पाँव से पकड़ लिया। वह कोशिश करता बचने

की, निकलने के लिए। बड़ी कोशिश करता और निकल नहीं पा रहा था। मगरमच्छ उसे पानी में खींचता जाता और वह बाहर आना चाहता था। थक-हार कर उसने सारी कोशिशें छोड़ दीं और ज्यों ही उसने अपनी कोशिश छोड़कर कहा—"राम !"अभी 'रा' ही कहा था कि मालिक, विष्णु आये और अपने सुदर्शन-चक्र से मगरमच्छ को मारा और हाथी को बचा लिया, निकाल दिया मौत के मुँह से, संकट से। इसे आप लोगों ने सुना, पढ़ा होगा।

पद है :—"सुने री मैंने निर्बल के बल राम।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।
जप बल, तप बल और बाहु बल,
चौथो बल है राम।
जब लगि गज बल अपना बरत्यो,
नेक सर्‌यो नहीं काम।
निर्बल वह बल राम पुकार्‌यो,
आये आधे नाम।
सुसे री मैंने निर्बल के बल राम।

यह ओट होती है। मैं सन्तमत के आधार पर ही यह बात कह रहा हूँ। ओट मालिक की ले लो। लेकिन बात तो दरअसल यह है कि सही ओट मालिक की नहीं ली आपने। आप गिरते हैं तो एकदम नीचे तक गिरते ही चले जायें। लोग कहते हैं—नहीं ! नहीं। जो गिरा हुआ है वह फौरन उठ जाता है, वह रह नहीं सकता गिरा हुआ। बेकार में ही आप चीखते-चिलाते हैं "मैं मर गया रे ! मेरा सर्वनाश हो गया रे ! मैं दुःख में मर गया रे !" वगैरह-वगैरह।

जब आप दुःख-मुसीबतों की चरम सीमा तक पहुँच जायेंगे तो "दवा हो जाती है दर्द का हद से गुज़र जाना।" अर्थात् परमतत्त्व, मालिक जब दर्द चरम सीमा तक पहुँच

जाये तो उस वक्त प्रकट हो जाते हैं :—

"दिल वही है जो हर घड़ी हर पल,
यादे जानाँ में बेकरार रहे ।
आँखों आँख है जो शामो - सहर,
गमे पुरकश में बेकरार रहे ।"

भक्त रोते है ! जब तड़प होगी पूरे तौर पर। तड़प होगी तो सारी दुनिया की बातें आप भूल जायेंगे। जब आदमी एक मिनट के लिए अपने को भूल जाता है तब उसकी मदद होती है। मैं यह कह रहा था कि गिरते हैं तो और नीचे जा गिरें, क्यों कह रहा था ? क्योंकि नीचे गिरने के बाद आप ऊपर ठहरेंगे।

मैं यहाँ एक उदाहरण (मिसाल) अपनी देता हूँ। क्योंकि मालिक के यहाँ कोई चीज न नीचे है, न ऊपर है और न ही आगे है, न पीछे है। वह घर सबसे न्यारा (अनुपम) है। वहाँ क्या नीचे, क्या ऊपर। सन् 1968 की बात है। अमेरिका में हम सभी फिलासफरों (Philosophers-दार्शनिकों) की एक बहुत बड़ी कान्फ्रेन्स हो रही थी। वहाँ एक बड़ी अच्छी बात है कि जब आप प्रोफेसर वगैरह जाते हैं तो अपनी-अपनी पत्नी को भी साथ ले जाते हैं, ब्रह्म माया के बिना अधूरा रहता है। मैं भाग्य (माता जी) को साथ ले गया। ये भी दर्शनशास्त्र की एम० ए० हैं। हम गये। बड़े-बड़े दार्शनिक आये हुए थे। छत्तीस मंज़िल का वह होटल था जहाँ कान्फ्रेन्स हो रही थी। तीन दिन लगातार मीटिंग थी, आखिरी दिन छत्तीसवीं मंज़िल पर प्रीतिभोज था। सभी लोगों को वहाँ प्रीतिभोज में सम्मिलित होना था। हम नौवीं मंज़िल पर ठहरे थे। हम नौवीं मंज़िल के अपने फ्लैट से बाहर निकल कर आये। ऊपर जाने के लिए लिफ्ट के

नज़दीक आये। लिफ्ट को नीचे से नौवीं मंज़िल और नौवीं से छत्तीसवीं मंज़िल तक जाना होता। मैं वहाँ आया तो कई लोग पहिले से वहाँ खड़े हुए थे। दरअसल ऊपर जाने के लिए काफी लोग थे, जो नीचे के तल्लों (मंज़िलों) से ऊपर जा रहे थे, हर बार लिफ्ट भरी हुई आती, उसमें काफ़ी लोग होते। बहुत लोगों को ऊपर जाते हुए देखते। हम इन्तज़ार करते रहे, तकरीबन 30-40 मिनट हो गये। ऊपर जाने में लिफ्ट भरी होती और नीचे जाने में एकदम खाली। हमने नीचे जाने की सोच ली मैंने भाग्य से कहा कि नीचे ही चलें। जैसे ही लिफ्ट ऊपर से खाली होकर नीचे की ओर जाती हुई हमारी मंज़िल पर आई हम दोनों उसमें नीचे के लिए चढ़ गये और चले गये। नीचे Ground floor भूतल्ले) पर। नीचे गये, नीचे ! फिर हम आसानी से, उसमें ही खड़े रहे और नीचे से ऊपर चले गये। जब हम नीचे गये तो ऊपर भी उतनी ही जल्दी पहुँच गये। ऐसी बात है मेरे प्यारो!

आप सभी अभी नीचे कहाँ गिरे ? नीचे पूरी तरह से गिरते चले जायं, तो ऊपर चले जाने का रास्ता सच में आसान है, जल्द ही ऊपर चले जायेंगे, समझे ! किसी शायर ने कहा है :—

"तनज्जुर कि मैं इन्तेहाँ चाहता हूँ,
कि शायद वहाँ हो तरक्की का ज़रिया।"

जब आपके दुःख की हद आ जायेगी तो वह दुःख, सुख में बदल जायेगा। वह सुख खुद-ब-खुद आ जायेगा। यही मैं बताना चाहता था।

"आप प्रगटे इस जगत् में, जीव के उपकार को।
निज दया से नाम देकर, किया जीव सुधार को॥"

अब जहाँ तक मनुष्य रूप में गुरु के आने का प्रश्न है

वह तो स्पष्ट नीचे जाने वाले जीवों को ऊपर ले जाने के लिए 'नामदान' देता है। अभी-अभी जो मैं ओट की बात कर रहा था कि जब आप पूरी तरह शरण ले लेंगे तब आपको लाभ होगा, लेकिन एक बात मैं कहना चाहता हूँ कि महाराज जी हमेशा कहा करते थे कि पहिले तो आप यही चरण की ओट ले लें फिर बाद में जो ओट आप को मिलेगी ध्यान सुमिरन के बाद तो आपके दुनिया के सारे काम बन जायेंगे, अन्दर से ध्यान, सुमिरन की लौ जब लगेगी आपका मन शुद्ध हो जायेगा तब, फिर ध्यान सुमिरन की ओट क्या मिलेगी वह तो प्रकाश की ओट होगी।

मालिक ने कलियुग में अवतार लेकर उस बहुत कठिन रास्ते को आसान बना दिया। लोग कर्म, धर्म और बहुतेरे रीति-रिवाज में पड़ गये थे। कर्म-धर्म से जो इच्छाएँ करते हैं या जो यज्ञों से हमें मिलता था, तो उसमें हमने समझा कि असल में ये हमारे सुख के लिए साधन हैं। जितना अधिक-से-अधिक देवताओं के यज्ञ से लाभ मिलता है हम उतना ही फँस जाते हैं। जिस चीज़ को हम समझते हैं कि वह हमारे सुख का साधन है वह दुःख का कारण, साधन है। दो 'बन्ध' हैं, जैसे—'शुभ-बन्ध' और 'अशुभ-बन्ध'। हम सभी जो बुरे कर्म करते हैं वह तो हमें बाँधते ही हैं और हम बुरी गति में जा पड़ते हैं। शुभ-बन्ध, जो अच्छा कर्म करते हैं तो हमें उसके फल को भी भोगने के लिए आना ही पड़ता है वापिस। इसलिये वापिस आकर अच्छा या बुरा कर्म किया फिर वह फँसाता है आवागमन में। यहाँ यह अर्थ है जिसे समझना है। वैसे कर्म, धर्म बुरा नहीं है। नहीं करने से तो अच्छा है अच्छा काम करना लेकिन हम अच्छे काम को ही अगर आख़िरी मंज़िल समझ, मान लें, तो वह दुःख का कारण बनती है इसका अर्थ यही है।

"ये हैं काँटे कष्ट के, और जीव समझे फूल थे।"

अब आप कैसे कहते हैं कि हमने बड़े पुण्य किये थे पिछले जन्मों में, और अब हम बिरला के घर में ही पैदा हुए हैं। आप कैसे कहते हैं कि ये काँटे हैं। दिखाई तो नहीं देते, लेकिन काँटे इसलिये हैं कि जब किसी के पास ज़्यादा धन हो जाता है, तो वह फँस जाता है यह अनुभव की बात है। उसका तुरन्त व्यवहार बदल जाता है, अहं आ जाता है। शराब, पान-सिगरेट की आदतें बढ़ जाती हैं तो यही एक इस दृष्टि से काँटा है। दूसरा यह भी है कहा जाता कि जब ज़्यादा धन आने लगता है तो रोग भी बढ़ जाता है। रक्त-चाप (Blood-Pressure), हृदय-रोग (Heart disease) वगैरह। गरीब आदमी को ब्लड-प्रैशर नहीं होता है। अमेरिका संसार के धनी देशों में सबसे ऊँचा स्थान रखता है। बहुत अमीर देश है। आप सभी समझते हैं कि वे लोग सुखी हैं। नहीं, नहीं! उनको तो मानसिक रोग सताते हैं, मानसिक रोगी इतने हैं कि मानसिक रोगों के चिकित्सक जिसे मनश्चिकित्सक (Psychologist) कहते हैं। वह एक घण्टे का इलाज करने के काफी पैसे लेते हैं। इलाज क्या उन्हें समझाते हैं कि तुम्हें यह मानसिक रोग इस रुग्ण-विचार के कारण है इस विचार को बदलो और उन्हें कुछ रोगमुक्त होने के लिए अच्छे विचार देते हैं। मैं भी वहाँ मनश्चिकित्सक हूँ। अमेरिका सरकार ने मुझे इसके लिए सरकारी मान्यता दी हुई है। मैं मरीज़ों को अच्छे-अच्छे विचार देकर जल्दी-से-जल्दी ठीक करता हूँ। वहाँ पर इतने मानसिक रोगी हैं कि मनश्चिकित्सकों के पास मरीज़ों की भीड़ और व्यस्तता है इतनी कि आज जिस मरीज़ ने अपना नम्बर लगाया है डाक्टर के पास तो उसे मिलने की तिथि दो महीने बाद मिलेगी।

पैगाम इतना ढेर, लेकिन वह काँटा है। सन् 1963 की बात है, डा० राधाकृष्णन (भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति) जो मेरे गुरु भी थे, विद्यागुरु। वैसे गुरु तो मेरे एकमात्र यही हैं परमसन्त, परम दयाल जी महाराज, इनके पास आने के बाद दुनिया के किसी गुरु के पास जाने की कोई जरूरत नहीं है। गुरु में यदि आपका थोड़ा-सा भी विश्वास डिगता है तो तकलीफ आती है। नारायण दास जी! मैंने लगभग आज से पच्चीस वर्ष पहिले दर्शन किये थे परमसन्त, परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज के।

मेरे विद्यागुरु, जब मैं अमेरिका में था आये। मैं वर्जीनिया में पढ़ाने के लिए गया हुआ था। मैंने उनको पत्र में लिखा "आप आ रहे हैं राष्ट्रपति के रूप में पहिली बार, (अमेरिका में निमंत्रित किया था) गुरुदेव! मैं यहाँ हूँ। उन्होंने मुझे पत्रोत्तर में लिखा, "ईश्वर, तुम मुझसे जरूर मिलना। मैं वाशिंगटन में आऊंगा फलाँ तारीख को, तो वहाँ का जो राजदूत है उसको पत्र लिख दो कि मैंने कहा है कि तुम्हें मुझसे मिलने देना है अर्थात् मेरे मिलने की व्यवस्था कर दें। मैंने वहाँ उसे चिट्ठी लिखी, इसका हवाला दिया।

मैंने चिट्ठी तो लिख दी राजदूत महोदय को, लेकिन उस राजदूत महोदय को क्या मालूम कि मेरा, मेरे गुरु से क्या सम्बन्ध है। मैंने दूसरी चिट्ठी लिखी दिल्ली, डा० राधाकृष्णन जी को। मैं आपको अपने अनुभव की एक बात बता रहा हूँ। वह मात्र मेरे विद्यागुरु ही नहीं थे, वह बहुत बड़े सन्त, सात्त्विक पुरुष थे। हम लोगों से बड़े प्यार से मिला करते थे। जब मैं उन्हें चिट्ठी लिखता तो ठीक सातवें दिन जवाब आ जाता फौरन, और मेरे पिता जी यानि कि

परम दयाल जी को तो, मैं अमेरिका से चिट्ठी लिखता तो ठीक पाँचवें दिन मुझे जवाब मिल जाता। मैं वहाँ हैरान होता कि क्या कोई खास हवाई जहाज़ से वह चिट्ठी भेजते हैं? तब मुझे डा० राधाकृष्णन जी की लिखी चिट्ठी मिली। उन्होंने मुझे लिखा "अगर वहाँ राजदूत महोदय, तुम्हें मिलने की ठीक व्यवस्था करने का उत्तर न दें तब भी तुम मुझे मिलना। उन्हें मैंने दूसरी चिट्ठी लिखी कि मुझे राजदूत महोदय ने ठीक जवाब नहीं दिया है।

मैं और भाग्य तथा मेरा छोटा लड़का प्रियदर्शी तीनों वहाँ राजदूत महोदय के दफ्तर (Office) में उनके पास गये। उनसे मैंने पूछा "क्या मेरी भेजी चिट्ठी आई थी?" उन्होंने कहा "श्रीमान्, ऐसा है कि राष्ट्रपति महोदय यहाँ 2 जून को आयेंगे तो आप ऐसा करें कि उस दिन आप आ जायें मैं आपको मिला दूंगा।" मैंने सोचा कि उनसे मिलने वाले कोई थोड़े-से लोग होंगे, तो हम थोड़ी प्रतीक्षा कर उनसे मिल लेंगे। मैं जब उनसे मिलने के दिन वहाँ पहुँचा तो वहाँ एक छोटे से हाल में तकरीबन चार-पाँच हज़ार आदमी बुरी तरह समाये हुए थे, इतनी भीड़ थी। जहाँ राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन बैठे थे, एक कुर्सी पर वह तो मुझे दिखाई भी नहीं पड़ रही थी। इतनी भीड़ थी और मैं इतनी दूर पीछे था। इसी बीच, मेरा पुत्र बिना मुझे बताये किसी तरह से भीड़ में से गुज़र कर आगे उनके नज़दीक जाकर बैठ गया। मैं सोचने लगा था कि आख़िर इस धक्का-मुक्की वाली भीड़ में कैसे उनसे भेंट होगी मेरी यहाँ पर।

उन्होंने मेरे पुत्र को देख लिया। प्रियदर्शी पर जैसे ही उनकी निगाह पड़ी, वह उसे पहिचानते थे, उन्होंने फौरन उसे बुला लिया अपने पास और पूछा "तुम्हारे पिता जी कहाँ

है ?" वह मुझे भीड़ में खोजता रहा, हम नज़र नहीं आये। डा० राधाकृष्णन ने महसूस किया इसे, फिर उन्होंने अपने सेक्रेटरी को बुलाया और कहा—"गुप्ता महोदय ! आप डा० आई० सी० शर्मा को तलाश करें और उनसे कहें कि अब तो यहाँ समय नहीं है। उन्हें यह कह दें कि मैं जा रहा हूँ और अगले सप्ताह मैं न्यूयार्क आ रहा हूँ और जिस होटल में ठहरूंगा उन्हें यह बता देना।

अब उनके सेक्रेटरी महोदय, गुप्ता साहिब मुझे भीड़ में से खोज कर मिले, ये सारी बातें उन्होंने मुझे बताईं, यह भी कहा कि प्रियदर्शी जी तो आगे पहुँच गये थे, उन्हें देखते ही फौरन राष्ट्रपति महोदय ने पहिचान लिया और बुला लिया था। मेरा डा० राधाकृष्णन से सम्बन्ध गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र की तरह था। जब वह वहाँ (न्यूयार्क) आये एक सप्ताह बाद, तो मैं उनसे मिला। वे फिर मुझे साथ-साथ, जहाँ कहीं भी उन्हें जाना था, लेकर घुमाते रहे अपनी मोटर-गाड़ी में। उन्हें जाना था U.N.O. अर्थात् राष्ट्रसंघ की मीटिंग में, उनका भाषण था। तब मैं उनसे अलग होकर सेक्रेटरी महोदय के साथ दूसरी कार में बैठ गया।

उस गाड़ी को चलाने वाला अमेरिकन ड्राईवर था, उससे सेक्रेटरी महोदय ने पूछा "आप कितनी तनख्वाह लेते हैं सरकार से ?" उसने कहा—मैं तीन हजार डालर मासिक वेतन पाता हूँ यानि कि तीस हज़ार रुपया मासिक वेतन। अगर यहाँ आपकी या आप में से किन्हीं की इतनी आमदनी हो, तो आप कितने खुश होंगे। इसके बाद मैंने सवाल किया "क्या आप सुखी हैं ?" उसने कहा—"I am miserable, अर्थात् मैं बेहद दुःखी हूँ," अब आप ही सोचें कि ये काँटे हैं या नहीं ? धन है उसके पास, अच्छी नौकरी, अच्छी

तनख्वाह और घर-परिवार है, फिर भी वह कहता है कि वह बहुत ही दु:खी है। बेचारा मन से दु:खी है। जिसको लोग सुख ; धन समझते हैं, वह मन के दु:ख का कारण, वह काँटा साबित हुआ। इसी बात को दाता दयाल जी महाराज कहते हैं कि ये सुख के फूल नहीं हैं, ये काँटे हैं।

"शब्द-योग की आप ही ने, आप दी शिक्षा हमें।"

दाता दयाल जी महाराज कहते हैं लोग दूसरे प्रकार का भी ज्ञान बढ़ायें, जैसे धर्म-कर्म यथार्थ विधि, भक्ति, सुमिरन, योग इत्यादि। राजयोग, हठयोग, तंत्रयोग का भी रास्ता है। लेकिन योग या तांत्रिक विधि जो है बड़ी कठिन है। राजयोग से भी सिद्धि होती है, इससे भी लोग निर्विकल्प समाधि में जाते हैं। राजयोग का पर्याप्त (समुचित) अध्ययन, ज्ञान और अभ्यास, अनुभव है मुझे। राजयोग से काफी हद तक आदमी ऊपर पहुँचता है, कठिन है। कुछ लोग जो हैं वह कठिन रास्ते से ही जाना चाहते हैं। तो शब्द के माध्यम से आपने हमें खुद आकर के धरती पर सहज-मार्ग की शिक्षा दी। हम सभी को सीधा-सादा, सरल, सहज-समाधि में सरल-रूप से जाने वाला मार्ग दिखाया और वह सुरत-शब्द योग है।

आगे शब्द है :—

"सुगम रीति से मिल गई, भव तरन को दीक्षा हमें।"

अर्थात् भव से पार जाने की दीक्षा। भव क्या है ? भव दरअसल में मन का क्षेत्र (Area) है। वह सब भव है, बाकी जो रास्ते हैं जिससे आप सिर्फ दर्शन कर सकते हैं। मालिक का जो इस संसार को चलाने वाला है। वह भी भव के अन्दर है। वैसे मैं एक बात आप लोगों को बताऊँ कि आप चाहे 'सत्य नारायण की कथा' का व्रत रखें, चाहे वह भक्ति करें,

जिसे उपासना कहते हैं या फिर चाहे कर्मकाण्ड करें। उसमें भी जगह-जगह लिखा है यही कि भव से परे जाना है। लेकिन ये रास्ते बड़े लम्बे हैं। देवता की जब पूजा की जाती है, तो लोग उस देवता को सिर्फ शारीरिक, आकार की शक्ति समझ लेते हैं। तुलसी दास जी ने रामायण में भगवान् शंकर पर पद लिखे हैं। मैं जब वह पद पढ़ता हूँ तो उसमें वही विचार पाता हूँ, जो राधास्वामी का जाप करने में। मेरे मालिक उसी का जाप करते थे लेकिन वह प्रतिबंध नहीं लगाते थे, कहते थे कि 'राम' कहो, 'कृष्ण' कहो या 'राधा-स्वामी' कहो, एक ही बात है।

एक बात बताना चाहता हूँ कि इस मानवता मन्दिर में कम-से-कम, कोई भी कट्टरपन्थी नहीं है। मालिक ने किसी को भी कट्टरपन्थी नहीं बनाया है। अगर आप कहते हैं किसी को कि 'राधास्वामी', 'राधास्वामी' कहो और कोई और नाम जपता है तो वह गलत नहीं है। कुछ लोग राधा-स्वामी ऐसे कहते हैं कि जैसे पत्थर मार रहे हैं। नहीं! ऐसे नहीं। राधास्वामी तो परमतत्त्व है, परम आधार है। उस परम भाव को आप अपने हृदय में अनुभव करते हुए बड़े कोमल ढंग से उच्चारण करें, राधास्वामी। उस तत्त्व का अनुभव करके आपके भीतर प्रेम न आये यह कैसे हो सकता है।

अब यह जो नाम की बात है, हमें क्यों राधास्वामी कहना चाहिए? कहना चाहिए! मैं तो कहता हूँ कि मेरा राधास्वामी ही नाम है, क्योंकि मेरे मालिक ने वही नाम दिया है। जिस मालिक के रूप का हम ध्यान करेंगे, हममें वही लक्षण आयेंगे। इसलिये हम राधास्वामी को ऊँचा मानते हैं। पीछे जो मैं रामायण की बात कह रहा था, शंकर की स्तुति है उसमें तुलसी दास जी कहते हैं :—

"नमामीशमीशाननिर्वाणरूपम्,
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम्।
(निजं) अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम्।"

अर्थात् "मैं शंकर को नमस्कार करता हूँ निर्वाण के रूप में।" दाता दयाल जी भी गुरु को निर्वाण के रूप में मानते हैं, कहते हैं—क्या राधास्वामी मत पर चलने वाले इस शब्द को नहीं स्वीकार करेंगे? 'निजम्' जो निजधाम है; निर्गुण है, निर्विकार है।

राधास्वामी दयाल जी, स्वामी जी महाराज, शालिग्राम साहिब जी ने भी, इनमें एक बात मैंने देखी कि कविता लिखते थे। स्वामी जी महाराज भी कविता लिखते थे, शालिग्राम जी महाराज भी कविता लिखते थे और दाता दयाल जी का तो कहना ही क्या है, सारी कविता-ही-कविता। परम दयाल जी महाराज की भी कविता है, कल नारायण दास जी के घर पढ़ी मैंने—और मुझे भी इसका रोग है अर्थात् लिखने का। यह है कोई ऊपर से प्रेरणा-स्रोत, ऐसे नहीं! सरल-से-सरल रास्ते बनाये। सहज-समाधि का, योग का शब्द बहुत ही सरल है लेकिन महाराज जी ने यह भी कहा कि यह सरल, सुगम जो शब्दयोग है यह एकदम, एकबारगी ही नहीं देना चाहिए किसी को भी। पहिले जो उसकी (व्यक्ति की) प्रकृति है उसको समझकर फिर उसके मन को शुद्ध करने का तरीका बताकर, तभी ही देना चाहिए अन्यथा नहीं। इसीलिये तो सत्संग की ज़रूरत होती है, कोई-न-कोई खास चीज़ हर सत्संग के अन्दर मिलती है। सरल तो है यह मार्ग, लेकिन उसके लिए सत्संग भी पहिले आवश्यक है।

"राधास्वामी सतगुरु, करुणा सदन दें नामदान।
सहज में हमको उबारो, बख्शो अपना सत्य ज्ञान।"

मैंने अभी कहा नाम, अवस्था का नाम है। यह वह अवस्था है, वह हालत है जिसमें पहुँचकर आप में किसी के प्रति रोष नहीं रहता, घृणा नहीं रहती, विद्वेष नहीं होता और न सुख होता है, न ही दुःख होता है। हमें किसी नाम की ज़रूरत नहीं मतलब यह कि किसी किस्म की शोहरत, ज्ञान-मान की ज़रूरत नहीं। वह जो अवस्था है वह अवस्था सहज अवस्था है, सन्त की अवस्था है, वह अवस्था पद, धाम, ज्ञान हमें दीजिये।

आज का सत्संग यहीं पर समाप्त करता हूँ। किसी को कुछ कहना हो तो कहें। बाहर से जो लोग आये हुए हैं थोड़ा सी बात उनसे कर लूँ।

राधास्वामी !

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,
मेरे परमप्रिय सत्संगियो !
राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई ।

पिछले महीने के मासिक सन्देश में मैंने आपको सत्संग के दौरे के सम्बन्ध में 27 जुलाई 1989 के प्रातःकाल तक की सूचना दी थी । मेरे प्यारे श्री राम प्रकाश आई० जी० पुलिस ने दो-तीन पदाधिकारियों को मेरे श्रीनगर जाने की सूचना दे रखी थी । इसलिये जम्मू के हवाई अड्डे पर उन्होंने हमारी बहुत सहायता की और सामान तक उठाकर हमें बड़े आराम से वायुयान में बिठा दिया । कश्मीर के पहाड़ों के ऊपर से उड़ता हुआ हमारा वायुयान ठीक समय पर श्रीनगर के हवाई अड्डे पर उतरा । कश्मीर यात्रा का मेरा यह पहिला ही अवसर था । मेरे पिता जी 1930 में मुल्तान के विख्यात सनातन धर्म के समर्थक राय बहादुर श्री हरिश्चन्द्र मेहरा C.S.I., E.A.C. के साथ उनके पारिवारिक अध्यापक के रूप में कश्मीर आये थे । उन्होंने इस दिव्य भूमि के बारे में और विशेषकर उसके कुदरती नज़ारों के बारे में जो कुछ मुझे बताया था, मुझे उसका स्मरण आ रहा था ।

शायद मैंने किसी सत्संग में अपने बचपन के अनुभवों

को बताते हुए मुल्तान के महान् दानी विद्वान् और धर्म में रत रायबहादुर हरिश्चन्द्र मेहरा के बारे में सत्संगियों को जानकारी दी होगी। यही महानुभाव हैं, जिनके निवासस्थान पर 1926 में महामना मदन मोहन जी मालवीय ठहरे थे और उन्होंने उस समय अखिल भारतीय सनातन धर्म सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। यद्यपि मैं उस समय अधिक से अधिक पाँच वर्ष का था, फिर भी मुझे चित्रपट (फिल्म) की तरह उन दिनों की घटनाएँ याद हैं। मुझे यह याद है कि इस सम्मेलन के जलूस में महाराजा अलवर के साथ एक बहुत बड़ी चाँदी की मोटरकार में महामना मदन मोहन जी मालवीय मुल्तान शहर के बाजारों से गुज़रे और लाखों लोगों ने उनका स्वागत करते हुए लगातार पुष्पवर्षा की। इसी अवसर पर मेरे पूज्य पिता श्री पंडित बलदेव शर्मा जेतली, मुझे रायबहादुर हरिश्चन्द्र की कार में उनके निवास-स्थान पर ले गये थे। उन्होंने श्री रायबहादुर हरिश्चन्द्र के सुन्दर भवन में मुझे महामना मदन मोहन मालवीय जी से परिचय कराया। इस भेंट को परिचय नहीं कहा जा सकता, बल्कि आध्यात्मिक मिलन कहा जाना चाहिए। मुझे अच्छी तरह याद है कि बहुत सुन्दर सजी हुई बैठक में महामना मदन मोहन जी मालवीय एक भव्य सोफे पर बैठे हुए थे। जब मेरे पूज्य पिता जी ने मालवीय जी को बताया कि मैं उनका सुपुत्र हूँ, मालवीय जी ने मुझे इशारे से अपनी ओर बुलाया। मैंने उनके पाँव छुए और उन्होंने बड़े प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरा। मैं अपनी निगाह को उनके सुन्दर चेहरे से हटा नहीं सका, किन्तु टकटकी बाँध कर उनके मुखारविन्द का दर्शन करता रहा। मुझे उस समय एक आन्तरिक आनन्द का अनुभव हुआ। उनके चौड़े माथे पर गोल लाल टीका विशेष सुन्दर दिखाई दिया। मुझे इस बात का पता

सन् 1969 में लगा कि महामना मदन मोहन जी मालवीय केवल राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नेता ही नहीं थे बल्कि सतगुरु भी थे। इस पृथ्वी पर हमेशा आठ विख्यात सद्गुरु मौजूद रहते हैं जब कि सद्गुरु वक्त एक होता है। उस समय के सद्गुरु वक्त तो दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी थे जिन्होंने अपने जीवनकाल में ही भावी सद्गुरु वक्त परमसन्त परम दयाल पंडित फकीर चन्द जी महाराज को जगत्-कल्याण के कार्य के लिए प्रेरित किया था। शेष विश्वविख्यात सद्गुरु जीवन के किसी भी क्षेत्र में काम करते रहते हैं। मिसाल के तौर पर श्री सी० वी० रमन विश्वविख्यात वैज्ञानिक थे, किन्तु वह सद्गुरु थे। इसी प्रकार डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन विश्वविख्यात दार्शनिक थे। वह भी सद्गुरु थे। इन आठ विश्वविख्यात सद्गुरुओं के अलावा 48 अन्य सद्गुरु भी आध्यात्मिक कार्य करते रहते हैं। मुझे उस समय इन सब बातों का ज्ञान नहीं था। 1969 में अमेरिका में ही मुझे इस भेद का पता चला था। इस सम्बन्ध में मैं फिर कभी चर्चा करूंगा। इस भेद का पता चलने के पश्चात् ही मुझे यह आभास हुआ कि 1926 में मेरी भेंट सद्गुरु महामना मदन मोहन मालवीय जी से हुई थी, जिन्होंने मुझे गायत्री मन्त्र का नामदान दिया। 1950 में मेरी भेंट मेरे विद्यागुरु डा० राधाकृष्णन से हुई और 1963 में मैं अपने परमगुरु सद्गुरु वक्त परमसन्त पंडित फकीर चन्द जी महाराज की शरण में आ गया। जब मैं अपने इस जन्म की घटनाओं पर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि कोई दिव्य शक्ति मुझे बचपन से ही सद्गुरु वक्त की शरण में आने के लिए तैयार कर रही थी।

अस्तु ! मैं आपको बता रहा था कि महामना मदन मोहन मालवीय जी ने मेरे सिर पर हाथ फेरा। इसके तुरन्त बाद

ही उन्होंने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा, "बच्चे ! गायत्री मन्त्र का उच्चारण करो।" मुझे यह याद नहीं कि मैंने गायत्री मन्त्र सीखा हुआ था या नहीं। मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया। उन्होंने अपनी जेब से एक नया पाँच रुपये का रंगबिरंगा नोट मेरे हाथों में दे दिया। मैंने दुबारा उनके पाँव छुए और उन्होंने फिर आशीर्वाद देते हुए मेरे सिर पर हाथ फेरा। मेरे जीवन की और भी ऐसी घटनाएँ हैं, जिन का सम्बन्ध रायबहादुर हरिश्चन्द्र मेहरा के सान्निध्य से है। समय-समय पर मैं आपको इन घटनाओं के बारे में मासिक सन्देशों में परिचय देता रहूंगा।

मैं इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था, जब हमारा हवाई जहाज़ श्रीनगर के हवाई अड्डे पर उतरा। ज्यों ही मैं जहाज़ से उतरा, श्री राम प्रकाश आई० जी० पुलिस एक एस० पी० के साथ मेरी ओर बढ़े और श्री राम प्रकाश ने तुरन्त दण्डवत् प्रणाम किया। मैंने उसे उठाकर गले से लगाया। उसकी आँखों में आँसू आ गये। क्योंकि वह करीब 30 वर्ष के बाद मुझे मिला था। जब हम हवाई अड्डे के भवन में पहुँचे तो रवि पंडित के परिवार वाले, जिनमें आचार्य श्री पृथ्वी नाथ पंडित भी मौजूद थे, हमें मिले और हमारा स्वागत किया। मैं आपको यह बताना भूल गया कि रवि पंडित इस यात्रा में मेरे साथ ही था। रवि पंडित की ओर से श्री पृथ्वी नाथ पंडित एक मारुति कार लाये थे। श्री राम प्रकाश हमें शहर ले जाने के लिए नई मारुति जिप्सी जीप लाये थे। हमने यह निश्चय किया कि माता जी मारुति में श्री पृथ्वी नाथ पंडित के साथ चलें और मैं तथा रवि पंडित श्री राम प्रकाश का साथ दें। इसका कारण यह था कि मेरे मन में राम प्रकाश के प्रति वात्सल्य की भावना उत्पन्न हो चुकी थी और मैं

उसे अकेला नहीं जाने देना चाहता था। वास्तव में हमारा यह निर्णय किसी छिपी हुई दैवी शक्ति के कारण था। जब हम विवाह-स्थल से करीब डेढ़ मील दूर थे, तो एक दुर्घटना घटित हुई। इस दुर्घटना के सम्बन्ध में मुझे विस्तारपूर्वक लिखना पड़ रहा है।

घटना इस प्रकार है। जब हमारी गाड़ी श्रीनगर के ठीक मध्य में एक सड़क से जा रही थी तो उसके बोनट से धुआँ निकलने लगा। ड्राईवर ने पहिले तो गाड़ी को धीरे किया। जब धुआँ और भी बढ़ गया तो उसने बायें किनारे पर उसको रोक दिया। उसने उतर कर बोनट को खोलना चाहा, किन्तु वह इस प्रयास में सफल न हुआ। कारण यह था कि गाड़ी बिलकुल नयी थी और उसे बोनट के खोलने का बटन मिल नहीं रहा था। चार-पाँच मिनट में गाड़ी की अगली सीट पर बैठा हुआ यह सब देखता रहा। जब धुआँ बहुत अधिक बढ़ गया तो राम प्रकाश ने मुझे कहा, "महाराज आप बाहर आ जाइये" इतने में बोनट थोड़ा सा खुला और इंजन के अन्दर से आग के शोले दिखाई दिये। सभी लोगों ने मिट्टी उठा-२ कर इंजन के अन्दर फैंकी, किन्तु धुआँ बन्द न हुआ। इतने में बोनट खोल दिया गया और आग बुझा दी गई। खुशकिस्मती की बात यह है कि आग के शोले कारबूरेटर के पास थे, किन्तु कारबूरेटर को आग न लगी। कारबूरेटर में पैट्रोल रहता है। यदि दुर्भाग्यवश उसमें आग लग जाती तो पैट्रोल के टैंक का ऐसा विस्फोट होता कि न ही केवल गाड़ी में बैठने वाले बल्कि गाड़ी के आस-पास के सभी व्यक्ति एक बम के विस्फोट की भाँति टुकड़े-२ हो जाते। आग बुझने के बाद दूसरी गाड़ी मँगा ली गई और हम विवाह के स्थल पर पहुँच गये। राम प्रकाश ने कहा, "महाराज! यदि आप हमारे

साथ न होते, तो हमारी रक्षा न होती।"

यह राम प्रकाश का विश्वास है और उसी के विश्वास ने मेरे मन में वात्सल्य की भावना उत्पन्न की थी। वात्सल्य की भावना माँ की भावना होती है और माँ हमेशा शिशु की रक्षा के लिए प्राण तक त्याग देने को तैयार हो जाती है। मालिक की यह मौज थी और वह मौज ही मुझे हर जगह ले जाती है और मेरे गुरु की आज्ञा का पालन कराती है। रवि पंडित का विवाह 10 जुलाई को सम्पन्न हुआ। किन्तु मेरी जम्मू को वापसी की उड़ान 11 जुलाई के स्थान पर भूल से 12 जुलाई कर दी गई थी। मेरे कहने पर इस तिथि को बदला गया। हम 11 जुलाई को ही श्रीनगर से हवाई जहाज द्वारा जम्मू को रवाना हो गये। बाद में पता चला कि 11 जुलाई के बाद दो दिन जम्मू की सभी उड़ानें बन्द हो गईं। हम 11 जुलाई को जम्मू में श्री रैना के घर पर ठहरे और 12 को सायंकाल तक होशियारपुर पहुँच गये। 12 रात्रि को जबरदस्त वर्षा हुई और 13 को जम्मू और होशियारपुर के बीच की सडकें टूट गईं। यह सब कुछ बताने का अभिप्राय यह है कि मालिक की मौज सदैव हमारी भलाई के लिए काम करती है। हमें हमेशा सद्गुरु पर पूरा विश्वास रखते हुए मौज के आधीन ही अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए। दाता दयाल जी ने इसी सत्य को बताते हुए कहा है :—

"जो कुछ होगा मौज से होगा,
मौज को परख सुजान री।
मेरी सुरत सहेली।"

जो व्यक्ति मौज पर नहीं रहते प्राय: दु:खी रहते हैं और निराशावादी हो जाते हैं।

16 जुलाई को मानवता मन्दिर में विशाल मासिक सत्संग हुआ। इसमें बहुत दूर-२ से लोग सम्मिलित हुए। सत्संगियों की संख्या इसलिये अधिक थी क्योंकि गुरुपूर्णिमा का त्यौहार इन्हीं दिनों मनाया जाने वाला था। मन्दिर के सभी कमरे मेहमानों से भर गये थे फिर भी बाहर से आने वाले सत्संगियों का लगातार ताँता बँधा रहा। क्योंकि 18 जुलाई को गुरुपूर्णिमा थी, इसलिये 17 जुलाई को भी एक विशाल सत्संग का आयोजन हो गया। 18 जुलाई प्रातःकाल 6 बजे गुरुपूर्णिमा का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। इस बार इस अवसर पर सत्संगी बहुत ही अधिक संख्या में दूर-दराज़ से आये हुए थे। पंजाब की गम्भीर स्थिति के बावजूद भी सत्संगियों की यह भीड़ ऐसे अवसर पर सराहनीय थी। इस गतिविधि से यह साबित होता है कि परम दयाल जी महाराज की सच्चाई का मिशन दिनोदिन उन्नति पर है। इसी कारण हर स्थान पर और हर अवसर पर सत्संगी तथा गैरसत्संगी इस सच्चाई को सुनने के लिए लालायित हो रहे हैं। विशेषता यह है कि नये सत्संगी हर स्तर से ताल्लुक रखते हैं। जहाँ इस सत्य के मार्ग पर चलने के लिए बुद्धिवादी और शिक्षित लोग अधिक से अधिक संख्या में लाभान्वित हो रहे हैं, वहाँ अशिक्षित भोलेभाले वे लोग, जो अन्धविश्वास के कारण भ्रान्तियों का शिकार हो रहे थे, सन्तमत की असलियत को पहचान कर पराभक्ति को अपना रहे हैं। मुझे इन सबके प्रेम और उनकी श्रद्धा को देखकर एक विशेष परम सुख प्राप्त होता है। इसलिये सत्संगों में मैं स्वयं खो जाता हूँ। मुझे शरीर, मन और आत्मा की भी सुध नहीं रहती। जब सत्संग समाप्त होता है तो मुझे परमशान्ति का अनुभव होता है। अब मैं पूरी तरह से समझ गया हूँ कि मेरे परमगुरु परमसन्त परम दयाल पं० फकीर चन्द जी

महाराज ने अपने अमेरिका के अन्तिम सत्संग में मुझे क्यों कहा था, "मानव दयाल ! तुम्हें जीवन्मुक्ति के स्तर से ऊपर उठकर उस उच्चतम अवस्था का अनुभव जिसमें तू और मैं दोनों समाप्त हो जायेंगे, तब मिलेगा जब तुम अपना अनुभव बाँटने की सत्संगियों की महान् सेवा करोगे।" उन्होंने यह आदेश देते हुए पिट्सबर्ग अमेरिका के मर्सी (दयामय) हस्पताल में बड़े मधुर और सीधे-सादे लहजे में इस अवस्था को बयान करते हुए कहा था कि वह उस समय इस विदेह-मुक्ति की अवस्था में थे, जिसे नीचे दिये गये पद्य में बताया जा सकता है :—

"माला फेरूँ न हरि भजूँ मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझको भजे तब पाऊँ विश्राम॥

इस पद्य में एक गूढ़ भेद छिपा हुआ है। आम आदमी उस भेद को नहीं समझ सकता। इसी पद्य में सहज समाधि का राज छिपा हुआ है और इसी में अद्वैत वेदान्त से भी ऊपर सच्चाई का भेद छिपा है, जिसमें रहकर कोई भी व्यक्ति वाचक वेदान्ती बनने के भ्रम में नहीं रह सकता। वाचक वेदान्ती "अहं ब्रह्माऽस्मि, अहं ब्रह्माऽस्मि" कहता हुआ ब्रह्म की असलियत को तो भूल जाता है और 'अहम्अस्मि अहम्अस्मि' के अहंकार में फँस जाता है। इसका कारण यह है कि वह यह समझने लगता है कि वह स्वयं ब्रह्म हो गया है और ब्रह्म उसी में रहता है अर्थात् ब्रह्म उस पर निर्भर करता है। इसके विपरीत सत्य तो यह है कि सभी जीव ब्रह्म में रहते हैं और ब्रह्म पर ही निर्भर करते हैं। जब इस निर्भरता का इस असहायपने का या दीनता का पूरा अनुभव हो जाता है, आँखें खुल जाती हैं और 'शरणागति' की वह सहज अवस्था मिल जाती है जिसमें मैं-तू का झगड़ा समाप्त

हो जाता है और कछ करने-धरने की ज़रूरत नहीं रहती। किन्तु याद रहे कि यह अवस्था केवल गुरु की कृपा और दया से मिलती है। इसलिये कबीर साहिब ने सहज समाधि को शब्दों में बताते हुए कहा है :—

"साधो सहज समाधि भली,
गुरु परताप भयो जा दिन सों, सुरत न अनत चली।"

इस गूढ़ भेद को मैं सरल भाषा में किसी और अवसर पर खोलूंगा। यहाँ पर केवल यह बता देना ज़रूरी है कि वास्तव में ईश्वर हममें नहीं रहता, हम ईश्वर में रहते हैं। ईश्वर का अविनाशी एवं साक्षी भाव अवश्य हममें मौजूद है। जब उसकी मौजूदगी का अनुभव हो जाता है तो अंश और अंशी का भेद समाप्त हो जाता है। अंश तभी अंशी बनता है, जब वह पूरी तरह से पराभक्ति और पराप्रेम को अपनाकर शरणागत हो जाता है।

मैंने मस्ती की हालत में ऊपर जो कुछ लिख दिया है, शायद आपको यह अच्छा न लगा हो। क्योंकि इस सच्चाई के धाराप्रवाह में बहते हुए मैं यह भूल गया था कि मैं अपने प्यारे सत्संगियों को मानवता मन्दिर की गतिविधियों से सूचित कर रहा था। जैसे मैंने पहिले भी कहा है कि सत्संग देते समय और मेरे परमप्रिय सत्संगियों से मासिक सन्देश द्वारा बातचीत करते हुए मैं आपके सच्चे प्रेम, आपकी श्रद्धा और विश्वास से इतना ओत-प्रोत हो जाता हूँ कि मैं आपमें और आप मुझमें विलीन हो जाते हैं। ऐ मेरे परमप्रिय, परम दयाल जी के स्वरूप सत्संगियो! आप वास्तव में मेरे इष्ट हैं। आपने ही मुझे अपने प्रेम से प्रभावित करके मेरी सहज समाधि प्राप्त कराने में योगदान दिया है।

जैसे कि मैंने पहिले आपको बताया है, गुरुपूर्णिमा का

उत्सव 18 जुलाई 1989 को मानवता मन्दिर में बहुत शान से सम्पन्न हुआ। 20 जुलाई तक बाहर से आने वाले सत्संगी मानवता मन्दिर में हो रहे और दैनिक सत्संगों से लाभ उठाते रहे। 22 जुलाई 1989 को हम प्रातःकाल होशियारपुर से रवाना होकर चण्डीगढ़ और लालरू होते हुए सायंकाल 6 बजे के लगभग देहली पहुँच गये। बहुत से बाहर से आने वाले सत्संगी 23 जुलाई के सत्संग के लिए सलवान पब्लिक स्कूल में पहुँच चुके थे। मैं राजपुर रोड से सायंकाल 7 बजे सलदान पब्लिक स्कूल में सत्संगियों को मिलने के लिए गया। उनके प्रेम और उनकी श्रद्धा से प्रभावित होकर मुझे उस रात वहीं रहने का निश्चय करना पड़ा। 23 जुलाई को प्रातःकाल 9 बजे विदाई सत्संग का आयोजन हुआ। इसमें आचार्य श्री के० पी० वर्मा, आचार्य कैप्टिन लाल चन्द तथा आचार्य श्री शब्दानन्द जी ने अपने प्रभावशाली सत्संगों से सत्संगियों की सेवा की। इस अवसर पर भी दूर-२ से प्रेम में ओत-प्रोत सत्संगी शामिल हुए। सत्संग के बाद करीब 4 बजे सायंकाल हम मैटाडोर से जयपुर के लिए रवाना हो गये। क्योंकि 24 जुलाई प्रातःकाल 8 बजे जयपुर के मानवता पब्लिक स्कूल का उद्घाटन होना था।

रात्रि को मेरे भाई श्री महाराज कृष्ण शर्मा के निवास-स्थान पर बहुत से सत्संगी हमारे पहुँचने से पहिले ही एकत्रित हो चुके थे। उनसे बातचीत करने के बाद रात्रि का विश्राम वहीं पर हुआ। प्रातःकाल उद्घाटन का समारोह मानवता पब्लिक स्कूल के नये भवन में बहुत ही सुन्दर रूप से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर डा० सुश्री गिरिजा व्यास, राजस्थान राज्य वित्तमन्त्री मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थीं। उन्होंने मेरे आशीर्वाद सत्संग के बाद बड़े आदर सहित नये पब्लिक स्कूल के उज्जवल भविष्य पर प्रकाश डालते हुए

बहुत सुन्दर और भावपूर्ण भाषा मेरे प्रति न ही केवल साहित्यिक गुरु के रूप में बल्कि आध्यात्मिक सद्गुरु के रूप में अपनी श्रद्धा व्यक्त की। अन्तर्राष्ट्रीय मानवता और सत्य परिषद् के अध्यक्ष सेठ श्री मोती चन्द गोलच्छा ने भी इस विद्यालय के भविष्य के बारे में अपने उद्गार प्रकट किये। इस मासिक सन्देश में यहाँ तक को सत्संगदौरे की सूचना देना ही उचित है। अगले मासिक सन्देश में दौरे की गतिविधियों के अलावा कर्म की प्रधानता की चर्चा भी की जायेगी। मेरी ओर से सबको इस मास को सद्भावना और आशीर्वाद।

आपका फकीरमय
मानव

शुभ सूचना

सत्संगियों को यह जान कर हर्ष होगा कि परमसन्त परम दयाल प० फकीर चन्द जी महाराज का 102वाँ जन्म-जयन्ती समारोह 18 व 19 नवम्बर 1989 को मानवता मन्दिर होशियारपुर के प्रांगण में बड़ी धूम-धाम से मनाया जायेगा इस अवसर पर परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराज का सत्संग-प्रवचन 18 नवम्बर को प्रात: 8-30 बजे से तथा सायंकाल 3-30 बजे से होगा तथा 19 नवम्बर को प्रात: 8-30 बजे से होगा।

सभी सत्संगी भाई-बहन इस शुभ अवसर पर सत्संग से लाभ उठाने के लिए सादर आमन्त्रित हैं।

जनरल सेक्रेटरी

सब का स्वामी

दयानिधि की दया अद्‌भुत, विधा भी अति निराली है ;
स्वत: आनन्द जग जाता, जो मन अन्दर से खाली है।
न सोचा था कभी हमने, कृपानिधि की कृपा होगी ;
कृपा ऐसी हुई उनकी, कि सच्ची शांति पा ली है।
कहूँ कैसे, लिखूँ कैसे, नहीं हैं शब्द वाङ्मय में ;
जो अनुभवगम्य सुख होता है, उसकी गति निराली है।
नशा जो बिन पिये छाये, अजब मस्ती भरी दिल में ;
उसी की याद में हरदम, दृगों में छाई लाली है।
वो भीतर है वो बाहर है, वो कण-कण में समाया है ;
जिधर भी दृष्टि जाती है, उसी की छबि निराली है।
वो सब का सत्य सम्बन्धी, वो सब का सत्य स्वामी है ;
उसी के नाते रिश्ते सब, उसी से लौ लगा ली है।
पिता वह जग चराचर का, अखिल ब्रह्माण्ड का स्वामी ;
बिना पग चलता है हर पल, अजब उसकी चलाई है।
झपकते मात्र पलकों के, वह वसुधा लाँघ जाता है ;
किधर से आ, कहाँ जाता, वहाँ किसकी रसाई है।
सकल ब्रह्माण्ड में व्यापक वही है, और कुछ भी नहीं ;
बिना रंग रूप रेखा के, वो संसृति की सच्चाई है।
उसे देखा, उसे जाना, उसे चेता उसे माना ;
उसे हमने पिता माना, वही सच्चा सहाई है।

वो अन्तर्तम निवासी है, वही घट-घट का वासी है ;
वो कण-कण में समाया है, न उससे कोई खाली है।
वो बाहर है, वो अन्दर है, वो जाहिर है वो बातिन है ;
वो अद्भुत है, वो अचरज है, वो राधा है वो स्वामी है।
मेरी आँखों का तारा है, वही सबका सहारा है ;
जगत् में वह समाया है, वही सब जग से न्यारा है।

छविनाथ प्रसाद ओझा

महत्त्वपूर्ण सूचना

आन्ध्र प्रदेश के प्रेमी सत्संगी भाई-बहनों को यह सूचना देते हुए हमें हर्ष हो रहा है कि परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का आन्ध्र प्रदेश का वसन्त सत्संग दौरा 30 जनवरी 1990 से 10 फरवरी 1990 तक होगा। दौरे का पूरा विवरण मानव मन्दिर के अगले अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

जनरल सेक्रेटरी

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
अलख अगम और अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
परम, सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये घर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम।
तुम महावीर और बुद्ध गोतम।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
दाता दयाल के प्यारे तुम मानव के रखवारे तुम।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।

11/89

Regd. No. 26265/74
MANAV MANDIR

NOVEMBER 10th 1989
NWHSP—7

Address

938 Sh. Shinde Vithal
S/o Arjan Rao Gouli Gudda
Banswada Post &
Tq. Banswada Distt. Nizamabad
A P.

From :

Phone : 2639

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR - 146 001

Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur (Pb.)